

डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल

बड़के भैया

(लघु उपन्यास)

साहित्य भवन ख्रा., लिमिटेड
इलाहाबाद-४

कॉपीराइट—लेखक

संस्करण	प्रथम, २०८४ ई०
प्रकाशन	साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड, इलाहाबाद-३
आवरण	शिव गोविन्द पाण्डेय
मुद्रक	सुपर फाईन प्रिन्टर्स १-सी, बाई का बाग, इलाहाबाद
मुल्य रुपये

भाई लक्ष्मीकान्त वर्मा को—

कितना अच्छा होता, बड़के भैया की एक-एक बात लिखी जाती। उनके खुद लिखने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। मतलब, कोई उनके साथ लिखता चला गया होता।

पर शायद यह सम्भव न था।

न तब, न अब।

लिखने-पढ़ने में वह इतने कमजोर थे कि बयान नहीं किया जा सकता। बड़के दादा के वह सबसे बड़े लड़के थे। शादी यही बीस-बाइस साल की उम्र में हो गई। उसी साल वह पटवारियान पास हुए थे। उनके ससुर जी भी पटवारी थे। इसलिए शादी होते ही बड़के भैया ससुराल में ही रह कर ससुर जी की पटवारीगीरी में हाथ बंटाने लगे। वह घर में बैठे खसरा, खतौनी, रोजनामचा वगैरह लिखते, ससुर साहब घोड़ी पर चढ़ कर अपने इलाके में घूमते, तहसील जाते और कुछ-न-कुछ रोज कमा के लाते।

गाँव के दामाद थे वह। गाँव की लड़कियाँ अकसर उन्हें घेरे रहतीं। बड़की भौजी को भी मजा आता। अक्सर बरामदे वाली कोठरी में ही-ही-ही की आवाज गूँजती रहती। कभी-कभार, पड़ोस के ठाकुर की बड़ी लड़की दुलारी आती भाभी को खींचकर उसी कोठरी में घुसेड़ देती। बाहर से जंजीर लगाकर कहती—“ओ जीज्जा, सखी के साथ का कर रहे हो ?”

दुलारी यही दुहराती और किवाड़ की दराज पर कान लगा कर सुनती—भीतर खिस-खिस की आवाज हो रही है।

बस सुबह, दोपहर, शाम गाँव की लड़कियों के साथ जीजा साहब का हुड़दंग होता और कागज-पत्तर धरा ही रह जाता। सासु जी कमाल की रहमदिल तथा ममतामयी थीं। ससुर जी जब शिकायत करते कि कागज-पत्तर नहीं पूरा हुआ तब वह कहतीं—“राउर दामाद के नौकर रखे हैं का ?”

फिर होता यह है कि ससुर जी घर रह कर खसरा-खतौनी पूरा करते और दामाद जी गाँव-तहसील जाने लगते। कितने जल्दी सारा गाँव-जवार, पटवारियान इलाका, उन्हें प्यार करने लगा। तहसील में, पटवारी-समाज में सबके प्रिय हो गए। इसकी वजह उनका प्यारा हँसमुख स्वभाव तो था ही, वह जरूरत से ज्यादा शाहखर्च भी थे। ससुर साहब तो खर्चा-खुराक किराया देते ही थे, सासु जी भी छिपे-छिपे उनकी थैली भरे रहतीं।

ससुर ने तीन वर्षों बाद ही अपनी पटवारीगीरी दामाद को सौंप दी, फिर तो बड़के भैया की तूती बोल उठी। उन्होंने रखा एक मुंशी और खुद कभी धोड़ी पर, कभी साइकिल पर सवार, लगे इधर-उधर घूमने। कई-कई दिनों तक घर से लापता। उन्हें ढूँढ़ने के लिए आदमी छूटते—कोई तहसील जाता, कोई जिला और कोई गाँवों में घूम-घूम कर पूछता। पर जब वह अचानक घर लौटते तब सब का मन भर जाता। एक बहंगी सब्जी, एक गट्टर नोट, दो-चार साड़ियाँ, पान-तमाकू—सब उनके साथ आता। साथ ही दो-चार लोग उनके संग जरूर आते।

फिर वह बताना शुरू करते।

एक तरह की बात ससुर से, दूसरी तरह की बात सासु जी से, तीसरी तरह की बात अपनी दुलहिन संतोला से। जितने दिन वह घर रहते, गाँव की लड़कियाँ उन्हें तरह-तरह से तंग करतीं। कोई बेसमय रंग डाल कर, कोई उनका कपडे चुरा कर, कोई उनके बिस्तरे पर गोबर बहा कर और कोई सोते में उनकी माँग में सेंदुर लगा कर। ससुर बहद नाराज होते, यहाँ तक कि गालियाँ भी बकते, सासु जी भी हल्ला मचातीं, पर बड़के भैया महज खिस-खिस हँसते और उनकी दुलहिन ठठा-ठठा कर।

संतोला दुलहिन की छोटी बहन थी—खरबुज्जा। वह भी अब शादी योग्य हो चली थी। सास-ससुर के इन दो लड़कियों के अलावा और कोई सन्तान नहीं। सास-ससुर जब कहते कि खरबुज्जा के लिए वर ढूँढो, तब बड़के भैया भझ बोलते—“लाला जी, वर की क्या कमी।

...हों अम्मा, जब चाहो शादी पक्की।”

बड़के भैया के दिमाग में उनके मझले भाई ही वर थे। जो मिडिल तक भी न पढ़ सके थे साथ ही एक कान के बहरे भी थे। ससुर इस शादी के लिये तैयार नहीं हुए। सासु जी भी नहीं। पर बड़के भैया इसी शादी के

लिये डट गए। काफी कहा—सुनी हुई। अन्त में वह नाराज हो गए, और ससुराल छोड़कर अपने गाँव चले आए। यहीं से आठ कोस दूर की पटवारगीरी करने लगे। कानूनगो का दौरा होता, तो वह गैर—हाजिर। नायब—तहसीलदार का कैम्प लगता, तब भी वह नदारद। और बार तो वह नौकरी से मुअत्तल भी कर दिये गये। तब ससुर साहब और बड़के भैया के पिता दोनों को भाग—दौड़ करनी पड़ी। तब कहीं जा कर वह बहाल हुए।

अन्त में जीत बड़के भैया की ही हुई। मझले और खरबुज्जा की शादी हुई। काफी लम्बी—चौड़ी बारात गई। एक डेरा नौटंकी। एक मशहूर तवायफ—कटारी बाई—उस बारात में आई।

कटारी बाई से बड़के भैया की यह भेंट जो हुई, वह आगे टूटी नहीं। बल्कि धीरे—धीरे गाढ़ी होती गई। इसकी वजह थे राजा साहब के छोटे मैनेजर ठाकुर प्रसाद। इसी छोटे मैनेजर ही उनको चरस—गाँजा की लत डाली। उनमें ऐसे—ऐसे स्वप्न जगाने लगे, जिनकी न उनमें समझ थी, न शायद वह उनके योग्य ही थे।

वह साइकिल पर चलते तो उनका मन घोड़े पर जा बैठता। वह घोड़ा पंख वाला हो जाता और वह हवा में उड़ने लगता। उसकी पीठ बैठे—बैठे उनके सिर पर राजा का साफा, कलंगी, फहर उठती। उनकी कमर में तलवार लटक जाती। मूँछों पर ताव देकर—बोल, कौन है राजा? मैं नहीं तो कौन है? ऐसा क्या है, जो मैं नहीं पा सकता—ऐसा क्या है, जो मुझमें नहीं?

उनके पास दिन—रात एक टार्च रहती। लगता, वह सूरज की रोशनी में भी टार्च जला कर अपने आसपास की दुनिया अपने ढंग से देखना चाहते। वह उस रोशनी में वही देखते जो उनके मन में होता।

बड़के भैया बेमतलब खिस—खिस हँसते और अक्सर कहते—‘झारे रो मंहगुआं’ एक बार वह छोटे मैनेजर के साथ, कटारी बाई के यहाँ से ससुराल की ओर लौट रहे थे। दोनों साइकिल पर थे। शाम का धुँधलका गहरा हो चला था। तब तक ठाकुर ने देखा, ओहार डाले बैलगाड़ी में कोई दुल्हन जा रही है। उसने बैलगाड़ी रूकवा ली। गाड़ीवान का हाथ—मुँह बाँध लिया। बड़के भैया से बोला—“मुंशी जी, गाड़ी में घुस जाओ।”

वह बड़ी हिम्मत से गाड़ी पर चढ़े। ओहार उठा कर देखा तो काँप गए—ठाकुर की वही लड़की दुलारी, संतोला (पत्नी) की सखी।

सखी मजाक करने लगी।

हाल—चाल पूछने लगी।

वह ससुराल से नैहर आ रही थी। बड़के भैया की बोलती बन्द। तब तक ठाकुर की आवाज गुंजी—“खींच लो बाहर।”

उन्होंने पूरी बात बताई। पर ठाकुर था नशे में। वह गालियाँ बकने लगा। औहार खींच कर हँसने लगा। और जैसे ही उसने दुलारी का हाथ पकड़ना चाहा, बड़के भैया ठाकुर पर टूट पड़े। लगी मार—पीट होने।

दुलारी के साथ—साथ वह ससुराल आए। रास्ते में दुलारी ने पूछा था—“कहो जीज्जा, ई बात सखी से कही कि ना?”

बड़के भैया चुप।

तब दुलारी ने ही कहा—“ऐसे लोगन की संगत में मति रहो जीज्जा।”

बड़के भैया बोले—“शर्मिन्दा हूँ दुलारी।”

दुलारी ने बड़के भैया को उसी बैलगाड़ी में ही अंक में बाँध लिया था और हँसती हुई बोली थी—“औहार के भीतर ही रहते तो मजा चखाती मुरहा।”

रास्ते में उसने और भी कई बातें पूछी थीं:

“सखी से जी नहीं भरत का?”

“कहाँ—कहाँ मारे—मारे फिरत हो?”

“रंडी—पतुरिया जी भरि देत हैं का?”

घर आकर दुलारी ने सखी से तो कुछ नहीं कहा। पर बड़के भैया ने संतोला भाभी से सब—कुछ बता दिया। सिर्फ वही एक बात छिपा ली—कि पिछली रात उन्होंने कटारी बाई के यहाँ बिताई।

अगले फागुन में ही ससुर साहब का देहान्त हो गया। तब बड़के भैया अपने गाँव में थे। खबर पाते ही संतोला भौजी और खरबुज्जा बहू को संग लिए ससुराल पहुँचे। सासु जी राते-रोते बेहोश हो गई थीं। शाम को ससुर जी की अर्धी कुआँनो नदी पर ले जाई गई। भाई साहब ने ही चिता में आग दी। पर वापस आते-आते आधी रात बीत गई। पूरे घर-गाँव में सन्नाटा छाया हुआ था। बड़के भैया की आँख ठीक चार बजे खुली। वह चुपके से घर में गए। नाबदान के ऊपर जहाँ पेशाब खाना था, खुरपी से वह जगह खोदने लगे। थोड़ी ही दूर ईंटों की तह मिली। वह कुदार ले आए और ईंट उखाड़ने लगे। ईंटों के नीचे उन्हें पीतल की बटलोई मिली। बटलोई को खींच की जैसे ही निकाला, सामने खरबुज्जा खड़ी मिली। उसने बटलोई पर हाथ धरते हुए कहा—“आधा मेरा।”

“कैसे ? भागती है कि . . .” बड़के भैया पसीने से तर-बतर थे। खरबुज्जा डरने वाली नहीं थी। उसने दोनों हाथों से बटलोई को थाम रखा था।

“भागती है कि नहीं . . .” बड़के भैया ने उसे धक्का दिया।

“आधा देते हो कि गुहार मचाऊँ ?” खरबुज्जा तम-तमा कर बोली।

बटलोई लिए हुए बड़के भैया घर के पिछवाड़े भागे। पीछे-पीछे खरबुज्जा दौड़ी। पिछवाड़े गेहूँ के खेत लहलहा रहे थे। ऊपर से चाँदनी छाई थी। बड़के भैया ने बटलोई में हाथ डाल कर सोने की दो गिन्नी और कुछ चाँदी के रूपये खरबुज्जा को दिए। बोले—

“देख खरबुज्जा, किसी से भी बताना नहीं।”

“दीदी को भी नहीं ?”

“किसी को भी नहीं।”

खरबुज्जा घर के भीतर चली गई। बड़के भैया ने मेड़ पर बैठ कर अपना अंगौछा फैयाला और बटलोई को उस पर उलट दिया। चाँदी के रूपए खनखना उठे। रूपयों के बीच वह जल्दी-जल्दी सोने की गिन्नियाँ बीनने लगे—कुल सोलह। बड़ी देर तक अपलक उस घर को निहारते रह। घर के भीतर से सासु जी की कराह, विलाप के स्वर कौंधते रहे। बड़के भैया न जाने किस लोक में थे। ऐसे लोक में, जो महज उनकी भावना थी। वह उसे जानते थे, पर समझते न थे। गिन्नियों के ऊपर चाँदनी बरस रही थी। पर उन्हें लगा, वह कहीं अंधेरे में खड़े हैं। पास से एक लोमड़ी गुजरी, भैया थर-थर काँप उठे। वह धन अंगोछे में बाँधने लगे। लोमड़ी बोल उठी—‘खो . . . खो . . . खो . . .’

जब तक आम के पेड़ में बँधा ससुर का घट न फुटे, जब तक महापात्र, महाब्राह्मण का भोजन न हो जाए, तब तक बड़के भैया को ससुर के लिए प्रतिदिन का कर्मकाण्ड पूरा करना था, पर वह एक दिन चुपके से वहाँ से गायब। ठीक उसी दिन लौटे जिस दिन ब्रह्मभोज था। उन्होंने तरह-तरह के बहाने किए—पत्नी से कुछ, सासु जी से कुछ, गाँव वालों से कुछ।

सोलहवें दिन सासु जी बड़के भैया के पैर छान कर रोने लगीं। भाई साहब उन्हें सान्त्वना देते रहे। रात को जब सारे लोग, गाँव-गढ़ी के जीव-जन्तु सो गए, तब सासु जी ने बड़के भैया जगाया। संग लिए वहीं नाबदान के पास गईं। सासु जी के हाथ में लालटेन काँप रही थी। धीरे से बोलीं—“लो बेटवा खोद लो, यहीं रखा है।”

“ना अम्मा, मैं हाथ नहीं लगाऊँगा, यह धन तुम्हारा है !”

“अच्छा, खोदो तो, अपने नाम से बैंक में जमा कर देना।”

सासु जी ने बड़के भैया के हाथ में खुरपा दे दिया। वह बड़ी सफाई से खोदने लगे, ठीक जैसे उसे ढँका था। फिर वही ईंटों की तह। ईंटों के नीचे वही बटलोई। सासु जी ने बटलोई बढ़ कर निकाली और उसे खाली देख कर वहीं पछाड़ खा कर गिर पड़ी।

अगले कई दिनों तक बड़के भैया सासु जी को समझाते रहे—“मैं तो हूँ अम्माँ, मेरे जीते जी तुम्हें किसी चीज की चिन्ता नहीं होनी चाहिए। रही धन गायब होने की बात—तो ऐसा भी हो सकता है, लाला जी की आत्मा उसे निकाल कर ले जा सकती है।”

फिर बड़के भैया ने एक बनिए की कहानी सुनाई—“कैसे वह मर कर कुत्ता हुआ। कैसे उस कुत्ते ने गड़ा हुआ धन खोदा... कैसे वह कुत्ता उस धन को नदी में ले गया...”

जब यह कहानी भैया सुना रहे थे, उनके भीतर वही लौमड़ी लगातार खों खों खों खों करती रही। वह मन-ही-मन उस पर तलवार भाँजते। पर वह लौमड़ी कभी संतोला भाभी बन जाती कभी दुलारी और कभी वही दिवंगत ससुर साहब—जो दामाद को समझाते—सुनो भाई, मनुष्य के दो जनम होते हैं—जब वह होश संभालता है, और जब वह कुछ खाहिश करने लगता है।

अब बड़के भैया अपनी पत्नी संतोला के साथ सासु जी के साथ रहने लगे। ससुराल में रह कर पटवारगीरी करना तो जरूरी थी ही—ससुराल में चालीस बीघे की जमीन—जायदाद का इंतजाम भी आवश्यक था। दरवाजे पर ससुर जी के खरीदे चार बैल, एक भैस, एक बैलगाड़ी, गन्ना पेरन का एक कोल्हू—यह सब था—और ऊपर से गाँव—जवार में इस घर की बड़ी इज्जत थी। बड़के भैया का यह सब सम्हालना था। गाँव के पीछे पूरे एक मील भर में जामुन का जंगल था—वह भी ससुर जी की निशानी थी।

इसी जंगल में एक दिन शाम को दुलारी सखी ने बड़के भैया की आंखों में आंखें डाल कर कहा—“जिज्जा...”

भैया बगलें झाँकने लगे।

तब दुलारी ने निःसंकोच बताया—“जइसे तोहार मन सखी से नाहीं भरत, वैइसे हमार मन हमरे ठकुरे से पूर नाहीं होत।”

बड़के भैया लजा कर खिस-खिस करने लगे।

“दाएँ-बाएँ का झाँकते हो जिज्जा ?”

कहती हुई दुलारी जामुन के झुरमुट में चली गई। हाथ पकड़ कर बोली—‘आओ ना।’

बड़के भैया जामुन की एक डाल पकड़े खड़े थे, बिल्कुल पत्थर बने।

दुलारी ने अपनी अंगिया फाड़ डाली।

वह वहाँ से भागे। उसी हालत में दुलारी उनके पीछे-पीछे।

भैया किसी पेड़ के पीछे छिप गए।

बड़े गौरव से भैया ने अपनी और दुलारी की यह घटना उसी छोटे मैनेजर—ठाकुरप्रसाद को सुनाई। और तभी से वह अक्सर भैया की चापलूसी करता, उन्हें खूब मजा आता। चैत रामनवमी के अयोध्या मेले में बड़के भैया गये थे—सासु और पत्नी को लिए हुए। संग दुलारी सखी भी आई थी। अयोध्या में सासु जी ने गुरु मन्त्र लिया। भैया ने सरजू में ससुर जी के अस्थिफूल प्रवाहित किए। और उसी शाम मेले में घूमते हुए उस ठाकुरप्रसाद से भेंट हुई।

उस रात बड़के भैया ने ठाकुर के साथ पहली बार शराब पी। और नशे में बोले—‘बोलो ठाकुर, तुम्हें क्या चाहिए?’ और अगले दिन उन्होंने खुद ठाकुर की भेंट दुलारी से कराई। उसे यह नहीं बताया कि यह वही व्यक्ति है जिसने कभी उसकी बैलगाड़ी पर आक्रमण किया था, बल्कि बिल्कुल एक नए रूप में—‘मेरे जिगरी दोस्त।’

दुलारी को क्या, वह ठाकुर से जीजा जी के दोस्त के रूप में मिली—वैसे ही हँसी-मजाक करती हुई।

अयोध्या के मेले से आ कर बड़के भैया अपने गाँव चले गए। तहसील से चपरासी आया। उनके पास खबर गई। वह वहाँ भी नदारद। उनको ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर आदमी दौड़ाए गए। पर कहीं न मिले। तहसील से दूसरा चपरासी, फिर तीसरा और बड़के भैया पटवारगीरी से मुअत्तल कर दिए गए। तब कहीं वह प्रकट हुए। उनके पिता जी, उनके मुन्शी—तहसील की खाक छानने लगे। फिर जा कर बड़के भैया अपनी जगह पर बहाल हुए।

सासु जी रातीं। बड़के भैया न ससुराल में रहते, न अपने गाँव में, न जाने कहाँ गायब रहते। ससुराल की खेती चौपट होने लगी। हलके भर में असामी लोग अपने कागज-पत्र लिए, पटवारी भाई को ढूँढ़ते, पर निराश लौट जाते। मुन्शी क्या करते ? वह ज्यादा से ज्यादा बड़के भैया के कागजात लिखता, और सासु जी को ढाँढस बंधाता।

दुलारी एक साल तक ससुराल न गई। इस बीच उसे गर्भ रह गया। उसने भाई साहब को बताया। उन्होंने ठाकुरप्रसाद से कहा। ठाकुर ने कहा—शहर में ले जा कर उसका गर्भ गिरा दिया जाए। पक्का कार्यक्रम बना।

दुलारी को लिए हुए बड़के भैया रात के अंधेरे में स्टेशन पहुँचे। वहाँ ठाकुर इन्तजार करता हुआ मिला। लखनऊ की तरफ से ग्यारह बजे एक्सप्रेस ट्रेन आती थी—उसी में बैठ कर जाने के लिए ठाकुर ने तीन फस्ट क्लास के टिकट खरीदे। अभी दो घण्टे का समय था। इस बीच ठाकुर न जाने कहाँ से एक बोतल ले आया। स्टेशन के पीछे अमराई थी। पक्के आम गिर रहे थे। और पुरा वातावरण पके आमों की खुशबू से भरा था। वहीं अमराई में शराब पिलाई शुरू हुई। उस रात साग्रह दुलारी को भी थोड़ा पिलाया गया। वह आव-बाव बकने लगी। सिगरेट लेने के लिए बड़के भैया स्टेशन आए। स्टेशन पर कोई अंधा भजन गा रहा था, भाई साहब उसका भजन सुनने लगे। तभी स्टेशन पर लाइन की घण्टी बजी। वह दौड़े हुए अमराई में आए। वहाँ वे दोनों गायब। फिर वह उन्हें पुकारने थोड़ी देर बाद ठाकुर की हँसी सुनाई दी। अमराई से सटे हुए भड़भूजे की खाली दुकान के भीतर से ठाकुर निकल रहा था।

“दुलारी कहाँ है ?” बड़के भैया ने पूछा।

“अन्दर, सो रही है।”

वह अन्दर गए। छप्पर में उन्हें डर लगा। माचिस जलाई। दुलारी राख के ढेर के पास अस्त-व्यस्त पड़ी थी। उसे जगाया। उसने अपने कपड़े ठीक करते हुए कहा—“जिज्जा, अब मैं आगे ने जाऊँगी ?”

वह थर-थर काँप रही थी।

बड़के भैया ने उसका दायँ हाथ थामा तो वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। उसे समझाते-मनाते हुए वह स्टेशन की ओर ले जाने लगे। अमराई के बीचोंबीच पहुँच कर ठाकुर ने न जाने क्या कहा। दुलार घायल सिंहनी की तरह ठाकुर पर झपटी। दाईं कलाई पर दाँत गड़ा दिए। ठाकुर ने चिख कर उसे मारा और वह लड़खड़ा वहीं गिर पड़ी।

स्टेशन पर गाड़ी को थी। पश्चिम दिशा से बड़े शोर के साथ तेज रोशनी लहलहाने लगी। बड़के भैया दुलारी को सम्हाले हुए स्टेशन पर आए। गाड़ी आ गई। और तीनों बिल्कुल खाली फर्स्ट क्लास में घुसे।

तेज पुरवा हवा चल रही थी और गाड़ी पूरब की ओर ही भागी जा रही थी। हवा को चीरती हुई गाड़ी की चाल में से एक अजीब-सा शोर पैदा हो रहा था। कभी लगता, गाँव में स्त्रियों का झुंड एक साथ कजली गा रहा हो। कभी लगता, हजारों सर्प फं-फं सन-सन करते हुए गाड़ी के दोनों ओर उड़ रहे हों।

तीनों अलग-अलग 'बर्थ' पर सो गए। कोई छोटा-सा स्टेशन आया तो ठाकुर की आँखें खुली। उस ने खिड़की से बाहर झाँक कर अनुमान लगाया—कुआँनों नदी का पुल अब आने वाला है। उसकी कलाई में खून अब भी रिस रहा था। उसने रूमाल बाँधते हुए एक नजर बड़के भैया को देखा, दूसरी नजर दुलारी को।

दुलारी के शरीर पर से उसकी आँख हिलना नहीं चाहती थी। थोड़ी ही देर में गाड़ी की चाल थोड़ी धीमी हुई। कुआँनों का रेलवे पुल आ गया। उसने धीरे-से दरवाजा खोला। दुलारी को झपटकर गले से पकड़ लिया। उसकी चीख से भाई साहब जग गए। वह दौड़ कर जब तक दुलारी या ठाकुर को पकड़ें, तब तक ठाकुर ने दुलारी को धक्का दे कर गाड़ी से बाहर फेंक दिया। पुल के नीचे उस अंधेरे में दुलारी की चीख काँधी, पर पुल पर गुजरती हुई एक्सप्रेस गाड़ी के शोर में वह न जाने कहाँ खो गई। भैया गाड़ी की चैन खींचने को हुए, तब तक ठाकुर ने दरवाजा बन्द कर उनको पकड़ कर बैठा लिया।

उस क्षण भैया ने जैसे पहली बार अपने आप को देखा। एक्सप्रेस दौड़ रही थी और उनका हवाई घोड़ा पटरियों पर कुचल मर गया। पुरवा हवा बह रही थी और उनकी हवाई तलवार पर मानो जंग लग गई थी। उनका साफा, कलंगी, मूँछे सब जैसे दुलारी नाँच ले गई। दुलारी की वह चीख उनके भीतर ठहर गई। उनकी नजर ठाकुर पर पड़ी, और उसके आरपार वह खुद को देखने लगे। स्वयं वह जैसे भाग रहे थे, पर ट्रेन उनसे तेज भाग रही थी। और वह आरपार का मनुष्य उन सब का पीछा कर रहा था।

अब तक बड़के भैया के दो लड़कियाँ और एक लड़का हो चुके थे।

सब से छोटा वही लड़का था—करीब पाँच साल का, जीने के लिए भाभी ने उसका भाभी ने उसका नाम रखा था—मूसे। तीनों बच्चे सुन्दर और चमकदार थे। भाई साहब को बहुत प्यार था उन से। सासु जी भी बहुत चाहती थीं, बच्चे माँ के साथ ननिहाल में ही रहें, पर भैया का ननिहाल का नाम ही जैसे काटता था।

इतनी दूर अपने गाँव में बैठ कर ही पटवारगीरी का जैसे-तैसे काम देखते। हल्के से चल कर असामी आते; कई-कई दिनों तक दरवाजे पर आलू-भौरी खाते, फिर बड़के भैया को अपने-अपने गाँव ले जाते। वहीं से वह तहसील चले जाते। सासु जी दरवाजे पर बैठी-बैठी भाई साहब के आने का रास्ता देखती रह जातीं।

दुलारी ने गाड़ी से कुआनों नदी में कुद कर आत्मा-हत्या कर ली थी— बड़के भैया के इस बयान से किसी को कोई शंका न रह गई थी। गाँव-घर के लोग तभी उस कलमुंही दुलारी को भूल गए थे। पर बड़के भैया को ससुराल के उस गाँव में पैर रखना मुश्किल हो गया था। उन्हें लगता, उस पूरे गाँव-सिवान में, जामुन के जंगल में, कछार और तलहटी में दुलारी घूम रही है। उसकी वह चीख, उनके दिल-दिमाग में ट्रेन की सीटी की तरह चीख उठती और उन्हें लगता, वह कहाँ भाग जाएँ। वह गाँधी डायरी पढ़ते, रामायण सुनते। शिव को जल चढ़ाते। और हर वक्त बीड़ी पीते रहते।

यहाँ तक कि कटारी बाई के पास भी न मन लगता। संतोला भाभी के पास भी नहीं। बच्चों में जरूर मन लगता, पर जी होता, उन्हें लिए हुए वह कहीं तीर्थ-यात्रा पर चले जाएँ। पर गले में पड़ी थी वह पटवारगीरी, ससुराल और न जाने क्या-क्या.....

वह अपने गाँव में ही पड़े रहते। मगर कहना यह चाहिए, वह वहाँ रह कर भी न रहते। बाजार जाते, लोगों से घिरे हुए गप्प मारते और कुछ भी न करते। फिर धीरे-धीरे उन्हें एक अजीब चीज में मजा आने लगा—गाँव में लोगों को तरह-तरह के उपायों से लड़ाते। अपने घर में अपनी साली (बहु) को गालियाँ देते। अपने छोटे भाईयों को तरह तरह के कष्ट देते। फिर सोचते—समाज में सुधार होना चाहिए। मनुष्य के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। यह संसार भावना नहीं, ठोस पदार्थ है।

उनका तीसरा और सबसे छोटा भाई अंग्रेजी की आठवीं जमात में पढ़ रहा था—एकाएक भैया ने उसकी पढ़ाई बन्द कर दी। उसे पोस्टमैनी की नौकरी दिलाने के लिए इधर-उधर दौड़ाने लगे। गाँव के पास के बाजार में लोगो को फँसा-फँसा कर एक छोटा सा डाकखाना खोलवा दिया। और उसी में भाई को डाक मुंशी के रूप में लगा दिया। खुद वहाँ जाकर बेमतलब घण्टों बैठे रहते और लोगों को जमा कर इधर-उधर की गप्पें हाँकते।

इसी बाजार में वह ब्राह्मण मिला था भैया को, जो एक धनी कायस्थ विधवा की लड़की के लिए वर तलाश कर रहा था। उसके सब्जबाग की तस्वीर से भैया खूब प्रभावित हुए और छोटे भाई के लिए वह शादी मंजूर कर ली। काफी धूमधाम से वहाँ बरात गई। उसी ठाकुर की मदद से दो हाथी और पाँच घोड़े आए। फैजाबाद की मशहूर नोटकी। पहली रात 'सत्य हरिश्चन्द्र'। दूसरी रात 'लैला-मजनू' की नौटंकी में लाठी चल गई। भैया को गुस्सा दिखाने का अजीब बहाना मिला। रात को पूरी बरात का भोजन धरा-का-धरा रह गया। सुबह बिना मड़वा हिलाए, लड़की को बिना विदा कराए बरात विदा होने लगी। गाँव के सिवान को पार करते-करते गाँव घेर लिया। लगी लाठियाँ चलने। कितने ही लोग हुए घायल। और अन्त में अन्त में बड़के भैया को हार माननी पड़ी। बरात वापस आई। सारी रस्में पूरी हुईं और लड़की के साथ बरात गाँव लौटी।

सासु जी बेहद परेशान।

तब एक दिन बड़के भैया ने सासु जी से धीरे से कहा—

“जमींदारी टूट रही है, जामुन का वह जंगल बेच दो अम्मा।”

सासु जी पहले तो भड़कीं। पर बड़के भैया पाठ पढ़ाते-पढ़ाते अन्त में सफल हुए। जंगल साढ़े छह हजार में बिक गया। बड़के भैया ने तब कहा—“अम्मा ! जमाना खराब है। इतना धन रखना खतरनाक है। इसे पोस्टऑफिस में जमा करा दें। तीन साल में सूद मिला कर दूना हो जाएगा।”

और सासु जी को लिए हुए वह शहर आए। एक बन्द पास बुक देकर बोले—“यह है जमा किताब, जब जी में आए, सरकार के खजाने से रूपया निकाल सकते हैं।”

हँसी-खुशी सासु जी घर आई। दामाद को उन्होंने अपनी ओर से ही पाँच सौ रूपए दिए थे।

गाँव में यह खबर मझले भाई की पत्नी खरबुज्जा को मिली। वह पति के साथ दौड़ी हुई नैहर गई और आधी रकम पर अपने हक की बात की। बड़के भैया बुलाए गए और झगड़ा होने लगा। गाँव के लोगों की उसने पंचायत बुलाई। लोगों ने फैसला दिया—“हाँ, उसे तिसरा हिस्सा मिलना चाहिए।”

पर भाई साहब ने एक नई गोटी चल दी। कहा—जब भी रकम पोस्टऑफिस से निकलेगी, तीसरा हिस्सा इसे जरूर मिलेगा।

उस वर्ष तीज मनाने तीनों बच्चों को लिए हुए संतोला भाभी नैहर आईं। वहाँ बड़ी लड़की को चेचक हो आया। बड़की भौजी की पीठ में औँधा फोड़ा निकला। सारा घर परेशान और दुखी। पर बड़के भैया का कहीं पता नहीं। बड़ी दौड़-धूप के बाद जब उन्हें खबर दी गई तब भी वह न आए।

और वह ससुराल तब आए, जब बड़ी लड़की की दाईं आँख छुआछुत की वजह से बिल्कुल ही फूट गई, और बड़की भौजी का वह औँधा फोड़ा पक कर बहने लगा।

दो-तीन दिन खुद मरहपट्टी कर के बड़के भैया घर में बिना किसी को कुछ बताए, तहसील चले गए। वहाँ कानूनगो की भैंस बीमार थी। उस की सेवा में लग गए। इधर सासु जी एक हकीम बुलाकर संतोला बितिया की दवा-दारु करने लगीं। फोड़ा अच्छा हो गया, पर भौजी के पेट में मीठा-मीठा दर्द रहने लगा।

बड़के भैया तहसील से करीब दो सप्ताह बाद लौटे। कानूनगो की भैंस की बीमारी और इलाज-उपचार के बारे में गाँव के लोगों की तरह-तरह की बातें बताते रहे।

ससुराल की खेती गाँव में कुर्मी-अहीर के हाथों अधिया पर दे दी गई। चारों बैलों में से तीन अब मर चुके थे। चौथा बैल बड़के भैया अपने गाँव हँका ले गए। साथ में बच्चे भी गाँव लौट गए।

बड़के भैया जब भी कहीं बाहर से अपने गाँव लौटते तब घर भर के लिए कुछ-न-कुछ जरूर जे जाते—कपड़े, फल, मिठाई, शहर की नई सब्जियाँ। और अपने साथ एक छाटी-सी टार्च जरूर ले आते। कई बण्डल बीड़ीयाँ, लखनऊ-गोरखपुर का खमीरा तम्बाकू, चरस-भाँग और दस-बारह रूपयों की रेजकारी।

गाँव भर के बच्चों को दो-दो पैसे देते। रात को टार्च जला-जला कर कभी पीपल के पेड़ पर बच्चों को भूत दिखाते, कभी सूने आसमान में रोशनी फेंक कर राम-सीता का पुष्पक विमान ढूँढ़ते।

बताते, राम-सीता विमान में बैठ कर हम सब को देखते हैं। अच्छे लोगों को राक्षसों से बचाने के लिए पहरा देते रहते हैं। फिर कहते, कितना भी पाप हो, अपराध हो, कुकर्म हो, एक बार राम-नाम कह देने से 'कटहिं कोटि अपराधा'।

सुबह-शाम लोग आसपास घिरे रहते। कोई चिलम के लालच से, कोई उनसे रूपया-पैसा झाड़ने के लिए और कोई उनसे लच्छेदार बातें सुनने के लिए।

सच बड़े उदार, स्नेही और हँसमुख थे बड़के भैया। चाहे घर हो या बाहर—किसी को भी कैसी जरूरत हो, वह जरूर मदद करते। पर महज वह अपनी मदद नहीं कर पाते। जिस चीज को भी वह छू देते, वही बिखर जाती। यह क्या है ? क्यों है ? पाप है या पूर्वजन्म का फल है। या दुलारी का श्राप है ? वह सोचते, ऐसा तो हर पुरुष के जीवन में होता है राम, गाँधी, 'हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस विधि हाथ' हाँ मनुष्य को सत्कर्म करना चाहिए।

बात-बात में कह पड़ते—'हमारे' घर की उन्नति होनी चाहिए। यहाँ कुछ ऐसा होना चाहिए कि लोग दूर-दूर तक हमें जानें और हमारी इज्जत करें।' इसी के लिए बड़के भैया घर वालों से उलझे रहते। अपने पिता जी को कहते—“आप क्या चारपाई तोड़ते रहते हैं, कुछ समाज-सेवा कीजिए। कथा-भागवत सुनिए।

देशाटन कीजिए। कुछ न सही तो कम-से-कम दरवाजे का बगीचा ही देखिए। फूल, पत्ती, तुलसी क्यारी . . . कुएँ के पास एक छोटा-सा मन्दिर बनाइए और हरिनाम लीजिए—लोगों की सेवा की कीजिए।”

पिता जी बड़के भैया की बातें सुन कर गुस्सा करते और अलग ले जा कर बड़बड़ाते—“ खौरही दँह मखमल का भगवा। हं अ, खेतीबाड़ी के लिए दरवाजे पर ठीक से तो हलवाहे नहीं मिलते, खुद सानी-पानी करना पड़ता है, खेतों में घास-फूस बीनने पड़ते हैं, ये चले हैं उपदेश देने।”

दोनों भाइयों पर किचकिचाते—“साले पोस्टमैनी करते हैं। चालीस रूपए महीने क्या कमाते हैं कि दिन—रात दरवाजे पर ही नहीं दिखते। या तो वही पास्टमैनी, नहीं तो घर के भीतर बीवी, बस। दुनिया गोल है इन मेहरों के लिए।”

छोटा भाई अब जिले के बड़े डाकखाने में पोस्टमैन हो गया था। बाजार का डाकखाना अब सरकारी हो गया था—वहाँ अब मझला भाई पोस्टमैनी करता।

ये दोनों भाई, बड़के भैया से आंख चुराते। और भीतर उनकी बीवीयाँ बड़की भौजी से तू-तू, मैं-मैं करतीं। इस बीच बड़के भैया ने घर की उन्नति के लिए एक और जबर्दस्त काम किया। अपने ही खानदान में थे बरखू बाबा। पास के ही दूसरे गाँव में—बिल्कुल अकेले, वृद्ध और निराश्रित।

उनके पास अब भी सात बीघे खेत थे। उसी से वह आराम से गुजारा करते। भैया उनके घर आने-जाने लगे और उनकी तन-मन-धन और धर्म से सेवा करने लगे। उन्हें अयोध्या-काशी घुमा लाए और उनके खेतों को अपने नाम लिखा लिया।

अब वह दोनों वक्त भैया के ही घर खाते, लेकिन सोते अपने घर में। थोड़े ही दिनों बाद दोनों छोटी बहुएँ बरखू बाबा को खाना खिलाते वक्त भुनभुनाने लगीं। खास तौर पर खरबुज्जा कहती—“खेत तो अकेले अपने नाम लिखाया, चौके में जलने के लिए हम बचे हैं।”

उन्हीं दिनों फिर बड़के भैया पटवारगीरी से मुअत्तल कर दिए गए। पर इस बार उन्होंने कोई चिन्ता न की। पिता जी, सासु जी बहुत परेशान, पर भाई का कहीं कोई पता नहीं। अन्त में उनकी पटवारगीरी छूट गई। हलका दूसरे पटवारी को दे दिया गया। तभी उन्होंने श्रीमद्भागवत की कथा बैठाई। सोलह दिनों तक कथा चलती रही और महायज्ञ के दिन, न जाने किस बात पर पूरे घर से लड़ बैठे। खरबुज्जा के ऊपर हाथ उठा दिए। दोनों भाइयों को, सारे नाते-रिश्तेदारों के सामने कच्ची-पक्की बकते रहे।

झगड़े की वजह बाद को सामने आई, जब सब कुछ समाप्त हो गया। एक टिन घी, जो ब्राह्मण भोज के लिए आई थी, उसे चुपचाप खरबुज्जा ने खिसका कर कहीं बेच दिया। बाद को यह भी पता चला कि घी के रूपए दोनों छोटी बहुओं में बँट गए।

इसके बाद ही बरखू बाबा बीमार पड़े और बिना किसी दवा-दरपन के मर गए। बड़के भैया अकेले अकेले उनके क्रिया-कर्म में लगे और सारा घर चुपचाप हाथ-पर-हाथ रखे देखता रहा उन्होंने सारा गुस्सा चुपचाप पी लिया। फिर न जाने क्या उनके मन में आया, वह अपना घर छोड़ उसी बरखू बाबा के घर में रहने लगे। इस पर सारा घर परेशान हुआ। सब उन्हें हाथ-पैर जोड़-जोड़ कर मनाने लगे। एक-एक को माफी मँगा कर तब वह कहीं माने।

वापस घर आए। उधर बरखू बाबा के घर में बच्चों का एक स्कूल खोलवा दिया। न जाने कहाँ से एक रिटायर्ड मुंशी ले आए, जो जाति के धोबी थे—वहीं बच्चों को पढ़ाने लगे। स्कूल का यह नशा बड़के भैया पर ऐसा चढ़ा कि सुबह-शाम इसी को लेकर गाँव-गाँव में घुमने लगे। लोगों से चन्दा वसूलते। बच्चे बटोरते और वह धीरे-धीरे भाषण भी देने लगे। और भाषणों के विषय भी खूब—क्रान्ति, त्याग, महानता, छुआछूत का विरोध, साक्षरता आदि। इस प्रसंग में वह अपने ही जीवन का एक उदाहरण देते, पटवारगीरी छोड़ देने का। कभी-कभी वह पटवारियों की बेईमानी, जनता के शोषण पर खुल कर बोलने लगते।

पर उन्हें खुद अपने घर की परवाह नहीं रहती। बड़ी लड़की अब ब्याह के योग्य हो चली थी, उसके बारे में उन्हें चिन्ता नहीं। दोनों और बच्चे घर पर पड़े रहते, उन्हें स्कूल भेजने की बात कभी नहीं सूझी।

बुढ़े पिजा जी ने दौड़-धूप कर बड़ी बेटी की शादी एक ऐसे विधुर से तय की, जो बड़के भैया की ही उम्र का था, और जिसकी पहली ही शादी से चार बच्चे थे। वह बहुत बिगड़े, पर तब उन्हें पहली बार जैसे अनुभव हुआ, उनकी बेटी एक आँख की है।

बेटी की इस शादी के बाद, बड़के भैया दिन-रात धार्मिक पुस्तक पढ़ते। हरदेवा के शिवाले पर जा कर शिव को जल चढ़ाते, और मनवर नदी के घाट पर बैठ कर लोगों से घण्टों बात करते। जब दिन के डेढ़-दो बज जाते, और जब उस दिन का गाँजा पूरा खत्म हो जाता, तब वह ‘हे राम’ कह कर घर की ओर बढ़ते। रास्ते में

जो कोई भी मिलता, उससे बातों-बातों में या तो कहते—‘जब-जब होहिं धर्म की हानी’... या कहते—‘हानि, लाभ, जीवन, मरन, जस, अपजस, विधि हाथ।’ जै जै सियाराम भाई !

मूसे बेटा को कई दिनों से बुखार आ रहा था। उन्हें चिन्ता उस वक्त हुई, जब मुसे एक रात बेहोश हो गया। वह रात भर उसे अंक में लिए हुए ‘शिव-ताण्डव’ गाते रहे। सुबह उसकी हालत कुछ सुधर गई। ग्राम विकास-खण्ड से डाक्टर बुलाया गया। उसने बताया, लड़के को ‘टाइफाइड’ है और अंतिमियों में गन्दगी रूकी है। उसने दवा की और दवाइयों तथा इन्जेक्शन के लिए कागज लिख कर शहर से मंगा लेने को कहा।

छोटा भाई रोज शहर जाता-आता। बड़के भैया ने उसे ही दवा-सूई का कागज दिया। वह शाम को खाली हाथ लौटा।

पूछने पर चुप, हजार चुप। सुबह जब वह फिर शहर डाकखाने की अपनी नौकरी पर जाने लगा, तब भाई साहब उस पर बिगड़े। तभी पिता जी बीच में बोल उठे—“दवा-सूई के दाम कहाँ है उसके पास ?”

बड़के भैया पिता जी और छोटे भाई का मुँह ताकने लगे। लम्बी सांस भर कर बोले—“हानि-लाभ, जीवन-मरन, जस-अपजस, विधि हाथ, ठीक है, जै सिया राम, मूसे को कोई दवा-सूई नहीं चाहिए..... परमात्मा मालिक है।”

शाम को छोटा भाई दवा-सूई ले आया। बड़के भैया ने पूरे पैकेट को आंगन में फेंक दिया और मूसे के पलंग के नीचे पूजा-पाठ करने लगे।

तीसरे ही दिन, रात को चार बजे मूसे का स्वर्गवास हो गया। मूसे से शव पर माथा गड़ाए बड़के भैया न जाने क्या-क्या बुदबुदाते रहे।

मूसे की उस मृत्यु ने भैया को कहीं तोड़ दिया। वह दिन-रात उसी हरदेवा के शिवाले पर बैठते-सोते और हंस-हंस कर या तो राम-वनवास की चौपाईयां कहते या तो लोगों से वही कथा कहते—बहेलिए के हाथ कृष्ण भगवान के तलवे में बाण लगना। जब वह यह कहते तब उनके मन के भीतर से वही दुलारी एक हांक लगा कर गाती—‘अनाड़ी सैयाँ न जाने प्रीति की रीति’। भैया उसे मन-ही-मन समझाते—क्या करूँ रे ? मैंने जनम भर अशुभ बातें सुनीं, वही सोचा, वही किया, मेरा अन्तःकरण बुरे संस्कारों से मालिक हो गया है रे, तू अपनी क्षमा से मुझे निष्पाप कर देलि !

मुझे बचा। मुझे कुछ पता नहीं, मैं क्या हूँ, क्या चाहता हूँ।

बड़के भैया पर सासु जी का प्यार अप्रतिम-अगाध था। वह एक तरह से भाई साहब के साथ बंधी हुई जी रही थीं। उनकी यह दशा सुनकर, वह पालकी पर बैठ कर आईं। उसी शिवाले पर उनकी पालकी उतरी थी। वहीं घर के लोग—खास तौर पर दोनों बेटियाँ और समधी साहब (बड़के भैया के पिता) उनसे मिले। भैया की दशा देख सासु जी रोती रहीं। पर वह सासु जी को समझाते रहे।

सासु जी उनको अपने साथ ले जाने के लिए आग्रह करने लगीं। उनके बिना उनकी घर-गृहस्थी की दशा है—इसको तरह-तरह से बताती रहीं।

बड़के भैया ने मुस्करा कर कहा—‘अब मेरा वहाँ क्या है ?’

सासु जी ने तड़प कर कहा—‘सब कुछ वहाँ तुम्हारा ही तो है।’

एक बार फिर दुःखी दुलारी की चीख हवा में तैर गई।

सासु जी के पास आ कर भैया बोले—‘सुनो हो अम्मा, वहाँ सब कुछ बेच-बांच कर अब यहीं चली आओ।’

यह प्रस्ताव सुनकर सासु जी कांप गईं। वह राती हुई बोलीं—‘ई का कहत हो बेटा ?’

भैया और पिता जी उन्हें समझाने लगे। समझाने क्या, डराने लगे। यह सिलसिला तीन दिनों तक चला। सासु जी वहीं यज्ञशाला में टिकी रहीं और किसी तरह से भी उस प्रस्ताव के लिए तैयार न हुईं।

तब भइया ने अपना निर्णय सुनाया—‘अगर मुझे चाहती हो तो यही करना पड़ेगा और कोई चारा नहीं।’

यह बात सुन कर सासु जी निरुत्तर हो गईं।

वह पूरी योजना बताने लगे—“वहाँ के मकान को तोड़ कर या बेच कर यहाँ आप के लिए अलग मकान बन जाएगा। वहाँ के खेत बेचकर यहाँ आप के नाम कुछ खेत ले देंगे। यहाँ मैं आपकी सेवा करूँगा और दोनों बेटियाँ रहेंगी आपके पास।”

भैया जैसे-जैसे योजना बता रहे थे, सासु जी को लगता, उनके हाथ-पैरो से भाप की तरह कुछ बाहर निकल रहा है। वह हाथ मलतीं और कुछ कहना चाह कर भी कुछ भी न कह पातीं। वह बिल्कुल चुप रह गईं।

भैया, पिता जी, सासु जी के संग उनके गाँव गए। वहाँ गाँव भर में फुसफुसाहट होने लगी। गाँव की औरतें सासु जी के पास आतीं तो वह उन्हें अंक में बांध कर न जाने क्यों विलाप करने लगतीं।

धीरे-धीरे गाँव-जवार के ग्राहक आने लगे। मोल-तोल होने लगी। सासु जी के पड़ोस में एक कुरमी परिवार था। उसने एक मुश्त सारे खेतों के दाम बोल दिए। साथ ही कुरमी मुखिया ने कहा—“माई जी, जब आप चाहेंगी, यहाँ मेरे घर आ कर रहेंगी और आपका वही सम्बन्ध यहाँ बना रहेगा।”

सारे खेत उसने खरीद लिए। पर अपना घर बेचने के लिए या तोड़ने के लिए वह तैयार न हुई।

बैलगाड़ियों पर अनाज, चुल्हा-चक्की, मेज-कुर्सी, पलंग-चारपाइयाँ, घर-गृहस्थी के सारे सामान लद-लद कर गाँव से बाहर जाने लगे। सारा गाँव सासु जी के दरवाजे पर चुपचाप बैठा था। उनकी पालकी ओसारे से लगी हुई खड़ी थी। वह अपने पुरखों के घर से बाहर नहीं निकल रही थीं।

बड़ी देर हो रही थी। जेठ का सूरज काफी ऊपर आ गया था। सिवान में गर्म हवा के बवण्डर उठने लगे थे! लू के छाया-मृग लहर बन-बन कर शून्य में कांपते हुए दौड़ने लगे थे।

हार कर बड़के भैया घर में घुसे। चारों ओर ढुँढ़ते हुए सासु जी को पुकारने लगे। पर कहीं से कोई उत्तर नहीं। टार्च जला कर देखा, तो दो देहरियों के बीच अम्मा अचेत पड़ी थीं। उन्हें देखकर भैया में जो अचेत था, वह जैसे जागने को हुआ, पर वह उसका सामना न कर पाए। ऐसे क्षणों में हमेशा यही लगता— सब प्रभु की माया है। यद्यपि मायापति वह स्वयं थे, तथापि वह कभी नहीं कबूल करते थे।

यहाँ आकर सासु जी अपने नए घर में रहने लगीं। संग में इतना अनाज, नमक-तेल, मसाला, यहाँ तक कि लकड़ी-कण्डा ले आई थीं कि पूरे दो वर्षों तक कमी नहीं पड़ी। उनके साथ भैया, दोनों बेटियाँ नाते-रिश्तेदार सब वहीं खाते रहते।

जब सासु जी के नाम सात बीघे खेत खरीदे जाने लगे, तब उन्होंने कहा—“बेटवा, तू ही अपने नाम से लिखा ले, अब मेरा क्या नाम ?”

हाँ, नाम ही तो शत्रु हैं। इसी नाम के लिए भैया ने इतने सारे धन्धे किए। इतना . . . इतने। पर यह नाम है क्या ? सासु जी अपना नाम नहीं चाहतीं, दुलारी ने अपना नाम मिटा दिया। पर राम, कृष्ण, गाँधी का नाम तो अमर-अजर है। यह कैसे ? भैया इस के आगे बीड़ी सुलगा कर मुँह में लगा लेते।

नाम मिटाने से ही नाम होता है—काश, भैया में यह समझ होती। पर यह कैसे सम्भव था ?

वहाँ के खेत जमीन की बिक्री के करीब तीन हजार रूपये सासु जी ने अपने पास ही सम्भाल कर रख लिए थे। भैया के कितना कहने पर भी न पोस्ट ऑफिस में वह धन जमा करने पर तैयार हुईं न किसी बैंक में।

कई पुश्त पुराने लकड़ी के उसी काले बक्से में अपने ब्याह, के लहंगे में बांध कर ताला मार कर रख दिया था। ठीक अपने पलंग के नीचे।

गर्मी, जाड़ा, बरसात वह उसी कमरे में सोती। दाँ करवट सोतीं, तो बायाँ हाथ पलंग के नीचे झुलाए रहतीं और बाएँ सोतीं तो दायाँ। वह कभी-कभार उसी बक्से से बातें भी करने लगतीं।

उन्होंने अपने ही धन से घर के सामने, करीब पचास कदम की दूरी पर एक कुआँ भी खुदवाया। वह उस कुएँ के अलावा कहीं और का पानी न पीतीं।

इस बार सासु जी के खेतों के धान की फसल का अन्न जैसे ही खलिहान में इकट्ठा हुआ, खरबुज्जा वहाँ जाकर अन्न की ढेरी पर पाँव पसार कर बैठ गईं।

धड़ाके से बोली—“आधे की हिस्सेदार मैं हूँ।”

“क्यों ? क्यों ?”

गाँव भर के सारे लोग उसे समझाने लगे। बड़के भैया गुस्से से पागल होकर उसे पीटने तक लगे, पर वह दौड़-दौड़ कर उसी ढेरी पर जाकर बैठ जाती।

झगड़ा बढ़ा। मझले और छोटे भाई एक हो गए। छिपे-छिपे पिता जी भी उन्हीं में थे। और इस तरह जो झगड़ा ठना, मानो वह ठना ही रह गया।

और अन्त हुआ उस सम्मिलित परिवार के बंटवारे से। बड़के भैया, संतोला भाभी और वही बीच की बिटिया—ये सब सासु जी के साथ, और शेष दूसरी ओर। आपस में बोलचाल बन्द।

बोलचाल बन्द वाले उस घर की पूरी तसवीर कैसे दी जाए ? जहाँ सब लोग अपने-अपने भीतर सुलग रहे हों और व्यवहार में बिल्कुल बेमुरव्वत हो गए हों। जेठ की दुपहरी से इसकी तसवीर की ओर महल इशारा किया जा सकता है। ऐसे दुपहरी, जहाँ सुबह से बहती हुई पुरवा हवा एकाएक थम चली हो। सूरज बिल्कुल सिर ऊपर हो। पेड़ों पर काले गोबरैले चीं-चीं करके बोल रहे हों।

बाहर बेहतर उमस, ऊपर से उड़ते हुए भुगने शरीर पर जहाँ बैठ जाएँ, वहाँ खुजली और घर के भीतर आ जाएँ तो वहाँ घुटन और पसीने से शरीर मिनटों में सराबोर। कुछ ऐसा ही हो गया था उस घर का सारा वातावरण और आपसी रिश्ते। कहीं से न कोई हवा चली, न कहीं से बादल ही दीखे।

भैया और सासु जी के लिए जब वह वातावरण असह्य हो उठा, तब एक दिन भैया ने पिता जी से पूछा—“आप चाहते क्या हैं ?”

काफी देर चुप रहने के बाद, पिता जी ने बड़े भोले स्वर में कहा—“मैं किसको क्या कहूँ, मेरी किस्मत ही ऐसी है !”

“कैसी किस्मत ?”

“सब लड़के नालायक निकल गए।”

“नालायक ?”

“मुझे क्या मिला ?”

“आपको क्या चाहिए था ?”

“सोचा था, तीनों में से कोई एक लड़का तो लायक निकलेगा। कुछ मुझे भी कमा कर देगा। समझूँगा, मैं भी चार पैसे का आदमी हूँ। तभी तो कोई मुझे पूछेगा, सोचो, जरा दूर तक, कि मैं कुछ गलत कह रहा हूँ ? गलत कहता हूँ, पाँच जूते मारो मुझे !”

पिता जी इसी बात को घुमा-घुमा कर तरह-तरह से कहने लगे। भैया जमीन पर बैठे हुए चुपचाप बीच की दाईं उँगली से सामने गोल, चकोरे, आड़ी-तिरछी लकीरें खींचते रहे-खींचते रहे।

सहसा उन्होंने सामने देखा—चींटियों का एक झुण्ड मुँह में सफेद-सफेद अण्डे दबाए, धीरे-धीरे आ रहा था। भैया की उँगली थम गई। धूल झाड़ कर वह एक किनारे खिसक गए। चींटियों का झुण्ड उन्हीं रेखाओं की जाल में घूमने लगा। पता नहीं चींटियाँ उस जाल में क्या ढूँढ़ने आई थीं !

बड़के भैया को याद आया। बचपन में इसी तरह चींटियों के झुण्ड के सामने उन्होंने आटा बिखेरा था। चींटियाँ अपने-अपने अण्डों को छोड़ कर आटे के एक-एक कण को लेकर चली गई थीं। वे अण्डे कहाँ गए ?

सहसा उनके दिमाग में जैसे बिजली कौंधी, दुलारी के गर्भ का वह अण्डा कहाँ गया ? वह दुलारी कहाँ गई ? वह खुद कहाँ गए ? मनुष्य उतना ही है, जितना वह बीता है। पर बीता हुआ इतना बुरा हो कि उसकी याद भी बर्दाशत नह हो—तब ? शायद ब्रह्मानन्द भजनावली में पढ़ा था—मानुस रेशम कीड़ा। वह अपनी देह से धागा कातता है। यही धागा उसका अतीत है.....।

चींटियों के लिए जैसे वे धूल की रेखाएँ सच थीं, आटे के वे कण सच थे, उसी तरह बड़के भैया के लिए वह ससुराल, पटवागीरी, जंगल-जायदाद, लोग-बाग, दुलारी वगैरह भी तो सच थे।

और भैया के लिए सबसे ज्यादा सच पिता जी थें वह अपने पुत्रों को सिर्फ धन न पाने के कारण नालायक और अपने आपको पुत्रों को सिर्फ धन न पाने के कारण नालायक और अपने आपको अभागा कहें, इसे कैसे सहा जाए ? और कैसे समझाया जाए ?

रेखाओं को मिटा कर चींटियों का झुण्ड आगे बढ़ गया। धूल में उनके पैरों के निशान इस तरह दिखने लगे, जैसे पुरुष के भाग्य की लिखावटें हों, जिन्हें महज देखा जा सकता है, पढ़ा नहीं जा सकता।

भैया ने बचपन में नदी के किनारे एक सफेद खोपड़ी देखी थी। उसे हाथ में उठा कर उसके भीतर-बाहर देखा था। माथे पर इसी तरह की रेखाएँ थीं। खोपड़ी का वह वजन आज जैसे उनके हाथ में झुल गया। तब उस खोपड़ी को पूरी ताकत से नदी की धार में फेंका था, आज उतनी ताकत लगाकर उसे उठाना पड़ा

कई दिनों तक गुमसुम रहे। न ठीक से कुछ खाते-पीते, न सोते-बैठते। लगातार बीड़ी फूँकते और हाथ की उँगलियाँ चटकाते।

एक दिन, आधी रात के समय सासु जी कटोरी में तिल का तेल लिए हुए भाई साहब के पलंग के पास आईं। सिरहाने खड़े-खड़े देखा, भैया दाएँ पैर पर बायाँ पैर उठाए हुए धीरे-धीरे उसका पंजा हवा में बड़ी तेजी से हिला रहे हैं। और बीच-बीच में कुछ बोलते भी जा रहे हैं।

सासु जी बड़ी ममता से बोलीं—“का हो बेटवा ?”

“सब ठीक है अम्मा।”

इतना-सा ही बोल कर वह चुप हो गए। सासु जी उनके सिर में तेल डाल कर धीरे-धीरे मलने लगीं। और अपना दुख-सुख बतियाने लगीं।

तेज पुरवा हवा चल रही थी। भैया आँखे मूँदे पड़े थे। जैसे—जैसे तेल उनके सिर में रचता जा रहा था, उनकी आँखों में शीतलता के स्थान पर आग की चिनगारियाँ फूटती जा रही थीं। सहसा सासु जी का हाथ रुक गए। बोली भी बन्द। बड़के भैया खिसक कर धीरे-से उठें देखा, अम्मा सिरहाने माथा टिकाए बेखबर सो गई थीं।

उनके पूरे शरीर में कुछ कँप-सा गया। लगा, बाहर से कोई दैवी ताकत, आ कर उनके भीतर बैठ गई हो। झटपझ उन्होंने सासु जी के अँचरे के खूँट से कुंजी खोल ली। बिजली की तरह भीतर गए। टार्च जला कर वह बक्सा खींचा। हाथ इस कदर काँपने लगा कि ताले में कुंजी ही ने जाए। अपने आपको एक भद्दी सी गाली दी। और बक्सा खोल लिया। लहंगे की तह में बँधी वही तीन हजार की रकम—सौ-सौ रूपए के नोट। बाकायदा गिन कर दो हजार ले लिए और शेष एक हजार उसी तरह बाँध कर रख दिया। बक्सा बन्द कर पलंग के नीचे ठेल दिया। ठेलते समय उसकी चपेट में एक छछुन्दर आ गई। वह चीं-चीं करने लगी।

उठ कर दोनों हजार के नोटों की धोती की तह में कमर से बाँध लिया। छछुन्दर बक्स के निचे शायद दम तोड़ रही थी। बड़के भैया ने धीरे-से थूका और लपक कर बाहर आ गए। आँचर में फिर उसी तरह कुंजी बाँधने लगे, पड़ोस में कहीं से एक तेज छींक आई। भैया डर गए।

और लौटकर धीरे-से फिर उसी तरह पलंग पर सो गए। अपनी तेज चलती साँस को दबाने के लिए वह मन-ही-मन ‘शिव ताण्डव’ के श्लोक दुहराने लगे। एकाएक उनके मुँह से श्लोक की एक पंक्ति चीत्कार कर उठी। सासु जी हड़बड़ा कर जग गईं।

“का भै बेटवा ?”

“भै का ? कछू तो नाहीं।”

सासू जी मारे संकोच के मुसकरा पड़ी। उठ कर बोलीं—“हम सपना देखत रहन, मानों कि हज्जारों आदमियन के मेला। बड़े-बड़े हाथी, ऊँट, घोड़ा, बैल, बकरी—तरह-तरह के जानवर... हाँ नाहीं तो का ?” एक क्षण चुप रह कर वह फिर बोलीं—“अरे ई तो सुकवा उइ आय, हाय, भिनसहरा दिखात बाय का ?”

फिर लम्बी साँस भर कर सासु जी अन्दर चली गईं।

भैया से सोया नहीं जा रह था ? भीतर ही भीतर जैसे सब सूख रहा था। उठे, कुएँ से पानी भरा और पूरा लोटा पी गए। धीरे-से पिता जी को जगाया। उन्हें संग लिए-लिए पूरबी सिवान के छोर पर ‘अकेलवा’ पीपल के पास आए। दोनों हजार रूपए पिताजी के हाथ में रख कर वह उनका मुँह देखने लगे।

पिता जी ने बड़े ठण्डे स्वर में कहा—“अरे, हम तो एक बात कह रहे, इतना सब कै का जरूरत !”

यह कहते हुए पिता जी नोटों को अपनी कमर में बाँधने लगे। भैया अब भी एकटक पिता जी का मुँह तक रहे थे। शायद वह खुश होकर कुछ कहें, पर एक सन्नाटा खिंचा का खिंचा रह गया।

पीपल के पेड़ पर से मुआंचिरई उड़ी और उत्तर दिशा की ओर चली गई। पिता जी घर की ओर मुड़ गए। भैया बड़ी देर तक वहीं पीपल के नीचे खड़े रहे। पुरवा हवा न जाने किस राग में पीपल के पत्तों से लड़-लड़ कर गा रही थी। बड़के भैया बेहद थके पाँव नदी की ओर जाने लगे।

सियारों के जोड़े-के जोड़े, कुछ अकेले—इधर-उधर से रात भर खा-पी कर अब साहू जी की झाड़ी में अपने घर लौट रहे थे। एक सियार उनके बिल्कुल बगल से चल रहा था।

“देखो, सारे कै ई हिम्मत !”

बड़के भैया ने डंडा खींच कर उसे मारा। सियार भगा। भैया ने उसका पीछा किया—पता नहीं क्यों ?

नदी के किनारे आ कर वह तट पर बैठ गए। बस, दिन निकलने ही वाला था। सूरज की लाली नदी के उस पार जंगल के ऊपर से दमकने लगी थीं। अचानक उन्होंने देखा—नदी की धार में एक सड़ी हुई लाश बही जा रही है—मानव लाश। छोटी-छोटी मछलियाँ उछल-उछल कर खा रही थीं। पता नहीं किधर से एक कौआ उड़ता हुआ आया, और लाश के ऊपर बैठ कर काँव काँव करने लगा। उसने मुश्किल से दो-तीन चोंचे मारी होंगी तभी एक कछुए ने लाश का पानी के भीतर खींच लिया। कौआ उड़ कर नदी तट पर हा गया—बड़के भैया के बिल्कुल करीब। वह उस कौए को निहारने लगे। एकाएक उन्हें ऊबाकाई आई और वह उल्टी करने लगे। उल्टी करते समय, वह धरती, वह नदी, वह कौआ, जंगल, लाश—सब घुमने लगे। स्वयं वह अपनी जगह पर मानो कुम्हार की चाक की तरह घूमने लगे। तब उन्हें लगा—सब एक-दूसरे से जुड़े हैं—एक और एक, सब एक।

उस समय भैया को ना जाने क्यों ऐसा लगा, वह घर जा कर सासु जी से सारी बातें सच-सच कह दें। बिल्कुल सच-सच। क्या होगा ? आदमी सच क्यों नहीं कह सकता ? झूठ है क्या ? जब वह लाश तक झूठ नहीं है, न वह नदी, न कौआ, तो ?

भैया एक पहर दिन चढ़ते-चढ़ते घर आए। सासु जी चाय-नाश्ता तैयार किए इन्तजार कर रहीं थीं। सच बोलने का यही क्षण है... यह क्षण बीतने न पाए। पर वह क्षण एकाएक डूब गया—जैसे कछुए ने उस लाश को पानी में डूबा लिया था। ‘अच्छा चाय-नाश्ता करने के बाद।’ वह भी समय बीत गया। ‘अच्छा रात को। नहीं कल। नहीं परसों। नहीं अगले मंगलवार को ? नहीं, हाँ, नहीं।’

इसी तरह दस दिन बीत गए। तभी आषाढ़ का पहला पानी बरसा। रात भर मूसलाधार पानी। सासु जी के कमरे में ऊपर खपरैल की दरार से कहीं पानी टपकता रहा। सुबह देखा तो पलंग के नीचे पानी। सासु जी ने पलंग हटाया तो न जाने कहाँ से बदबू फैली। काठ का बक्सा उठाया तो उसके नीचे वही छछुन्दर सड़ी हुई मिली।

कमरा भीतर से बन्द कर सासु जी ने बक्सा खोला। कहीं उसके अन्दर पानी न चला गया हो। पर बक्सा ठीक-ठाक था। लहंगे की तह के ऊपर दोनों हाथ रखे हुए सासु जी न जाने क्या अपने आप से बतियाने लगीं। तह के भीतर धीरे-धीरे इस तरह दायों हाथ डालकर टटोलने लगीं, जैसे गर्भवती माँ पेट पर हाथ थपक कर भीतर के शिशु को छूने की कोशिश करती है, और स्वप्न देखती जाती है।

सासु जी के हाथ में नोटों का बण्डल छू गया। वह डर गई। झटपट चिराग जलाया और नाट गिनते-गिनते ही वह मूर्च्छित हो गई।

दोपहर को जब भैया चौक में बैठ कर भोजन करने लगे, तब उन्हें, केवल उन्हें सुनाई पड़ा—कोई विलाप कर रहा है।

“अम्मा कहाँ हैं ?”

“अपने कमरे में !” संतोला भौजी ने बताया।

भैया सासु जी के बन्द दरवाजे पर कुण्डी खटखटाने लगे और मन में संकल्प करते रहे—अब सच्ची बात बता दूँगा—जरूर-जरूर बता दूँगा।

बड़ी मुश्किल से सासु जी ने दरवाजा खोला। वह अबोध दण्डित शिशु की तरह आँखों में आँसू भरे भैया को एकटक निहारने लगीं। वह काँप गए। पर दूसरे ही क्षण सम्भल कर बोले—“क्या हुआ ?”

सासु जी उसी लहंगे में मुँह छिपा कर चिल्ला पड़ीं—“चोर... चोर।”

पूरे दो दिन बीत गए, सासु जी ने अन्न-पानी नहीं छुआ। उसी कमरे में या तो निःशब्द रोतीं या न जाने किससे फफक-फफक कर बाँते करतीं। तब भैया ने तय किया, जैसे भी हो, दो हजार रूपए कमा कर अम्मा को दूँगा।

अगले दिन वह गाँव से कहीं बाहर जाने वाले थे। रात को जब सब लोग खा-पी कर सो गए, तब बड़के भैया पड़ोस में पिता जी के पास गए। बरामदे में छोटे-से गड्ढे में आग जला कर वह चिलम चढ़ा रहे थे। चारों ओर अन्धेरा था। भैया उनके सामने बैठ गए। उनके बोलने के पहले पिता जी ने कहा—

“सुनो हो बड़कू, गजब होइगै, छोटके ने दोनों हजार मार दिया।”

पहले तो भैया को लगा, पिता जी पट्टी पढ़ा रहे हैं, पर जब उनकी आँखों से आसू झरने लगे, तब वह आवाक रह गए।

“यह कैसे हुआ ?” भैया ने पुछा।

“मैंने अपनी आँखों से देखा।”

“फिर आपने पकड़ क्यों नहीं लिया ?”

“पकड़ा तो.....।”

“फिर ?”

“छोटका बोला, मेरी दो लड़कियाँ हैं, बारह-चौदह साल बाद उनकी शादी करनी होगी.....”

बड़के भैया तड़प कर उठे। पिता जी ने उनका दायाँ हाथ पकड़ लिया—“मुँह खोला तो बात खुल जाएगी।”

“खुल जाए..... मैं कबूल करूँगा। क्यों नहीं ?”

पिता जी अब भैया को समझाने लगे—“कोई बात नहीं, वह अपना ही है। धन आखिर कहीं बाहर तो नहीं गया।”

अगले दिन भैया गाँव से चले गए। उसी ठाकुर प्रसाद से मिले। उसने कहा—“अब तो जमींदारी राज-रियासत भी खतम। मुझे भी अब कुछ नया करना की है..... अच्छा है, कुछ साथ में ही मिल कर काम करें।” ‘पेथेड्रीन’ की सूई स्वयं लगा कर दाएँ हाथ से बाईं बाँह मलते हुए वह तरह-तरह की योजनाएँ बताने लगा—ईंटों का भट्टा लगाना, नेपाल की तराई से गाँजा-भाँग छिप कर ले आना, गाँव से लड़कियाँ भगाकर शहर में बेचना, मुर्गा-मुर्गी का फारम खोलना, वगैरह-वगैरह

भैया वहाँ से भागने को हुए। ठाकुर ने कहा—“मुंशी जी, भागते कहाँ हो ? अरे चलो, कहीं थोड़े दिन ऐश करें, क्या रखा है साली इस दुनिया में ?”

भैया में सोया हुआ वह भूत मनुष्य फिर जगा। पर वर्तमान मनुष्य उससे भागा नहीं। दोनों टकराने लगे। कभी एक झुकता, कभी दूसरा और और उन्हें लगा, वह नदी में जिन्दा ही बह रहे हैं और उनके माथे पर वही कौआ बैठा काँव-काँव कर रहा है।

पर भैया केवल मुसकरा कर रह गए।

ठाकुर ने अपनी अटैची में से नोटों की ढेरी दिखाई। भैया ने कहा—“ठाकुर, मुझे दो हजार कर्ज नहीं दे सकते ? मैं सूद—ब्याज सहित तुम्हें लौटा दूँगा, भगवान कसम !”

ठाकुर तब हँसा था—“ऐ सुनो। ये रूपए हैं ऐश करने के लिए तुम भी कहाँ फँस हो मुंशी, अरे जो हुआ सो हुआ, चलो बनारस, हाँ नहीं तो !”

ठाकुर के साथ भैया बनारस चले गए। वहाँ ऐसे रमे कि सब भूल गए। ऐसा हमेशा ही हुआ था। वह पुरवा हवा की तरह थे। बहे और बहते रहे। और एकाएक कहीं भी थम गए—वर्तमान—भूत—भविष्य सबसे कट कर। कभी उनके कार्मों से लगता, उनमें कोई लक्ष्य है, पर कभी लगता, वह सिर्फ उन्हीं लक्ष्यों—कर्मों से भाग रहे हैं और कभी लगता, वह सब कुछ महज भुलना चाहते हैं।

उन्हीं दिनों संतोला भौजी के पेट में वह दर्द उभरा भैया को ढूँढ़ने कहाँ-कहाँ आदमी नही गए। भौजी उन्हीं का नाम रटती हुई शहर के जनाना अस्पताल में आई।

लेडी डाक्टर ने कहा—“पेट का आपरेशन होगा, पित्त की थैली में गड़बड़ी है।”

“बिना उनके आए, मैं आपरेशन न कराऊँगी।”

भौजी यही रटती रहीं। सारे लोग समझा कर थक गए। लेडी डाक्टर ने उन्हें हार कर अस्पताल से डिस्चार्ज कर दिया।

दो कहार उन्हें खटोले पर उठा कर मुश्किल से थोड़ी ही दूर गए होंगे कि तेज बारिश होने लगी। ओहार डाला हुआ खटोला भीगने लगा। मझले और छोटे, दोनों भाई भाभी की सेवा में थे। कचहरी के पास एक बरगद के नीचे उनका खटोला रोक दिया गया।

भौजी का दम घुटने लगा। ओहार हटा दिया गया। बारिश तेज हो गई। चारों ओर वर्षा का हाहाकार। दिन में ही अन्धेरा होने लगा। कहार लोग भाभी की डोली कचहरी के बरामदे में ले जाने लगे। भौजी ने हाथ जोड़े और धीरे-से सिर हिलाया। इधर-उधर निहारने लगीं।

चारों ओर वही तूफानी वर्षा। उनकी हृदयगति रूकने लगी। पैर बर्फ की तरह गलने लगे। एक बार जबान तड़पने को हुई। पर हृदय पहले ही रूक गया।

बनारस में भौजी के स्वर्गवास की सूचना भैया को जमुना पाण्डे से मिली। पड़ोसी गाँव के जमुना पाण्डे वहाँ अपने बेटे की शादि के लिए सामान गए थे।

भैया गाँव लौटे। तब संतोला भौजी का सारा क्रिया-कर्म समाप्त हो चुका था। वह सासु के उसी कुएँ की जगत पर चुपचाप रम गए। न किसी से कुछ बोलते, न पुछते, न कुछ जवाब ही देते।

खरबुज्जा भैया की तरफ रहने लगी। उसी सासु के घर में। खरबुज्जा के पति घर-गृहस्थी के काम देखते और साथ ही अपनी पोस्टमैनी भी करते।

सासु जी विक्षिप्त-सी रहने लगीं। वह दिन-रात हाय-हाय करतीं और भैया को देखते ही निःशब्द राने लगतीं। जब रोतीं तब नीचे के होंठ दाँतों से कस कर दाब लेतीं। बहुत कम नींद आती। खाना-पीना और भी कम।

भैया उनका इलाज कराने लगे। पहले वैद्य से, फिर हकीम और अन्त में शहर के डाक्टर के पास ले गए। डाक्टर ने बताया—“रोग मानसिक है और इनके भीतर डर समा गया है।”

सासु जी रटती रहतीं—“उनके ऊपर किसी ने जादू-टोना कर रखा है। भूत हाँक दिया है।” जैसे ही शाम घिरने लगती—वह थरथर काँपती हुई कहने लगतीं—“देखो-देखो। पेड़ पर से वह आ रहा है। खपरैल पर आ बैठा... घर में आ गया... और मेरी छाती पर बैठ गया।” और वह छाती पीटने लगतीं।

भैया अगर कुछ समझाते, सहारा देने लगते तो वह चिल्ला कर कहतीं—“लूट लिया... लूट लिया... हाय लूट लिया !”

इन सारी स्थितियों में खड़े बड़के भैया को इस तरह लगता, जैसे वह किसी जलते हुए सरपत के जंगल में फँस गए हैं। कहीं कोई दिशा नहीं। चारों ओर आग और धुआँ... धुआँ।

अचानक एक रात उन्हें ठीक शुक्र उदय के वक्त, कहीं से वंशी की एक अद्भुत, मर्मभेदी टेर सुनाई पड़ी। वह बिस्तर से उठे और मृगशवक की तरह उसी वंशी-स्वर की ओर चले। चलते गए उसी मनोरमा नदी की ओर। नदी तट पर देखा—एक नाव खड़ी है, और उस नदी में कोई साधु वंशी बजा रहा है।

सुबह तक वह वंशी उसी तरह बजती रही। भैया बिल्कुल नाव के पास मन्त्रमुग्ध खड़े रहे—घुटने भर पानी में ! साधु की आँखें बन्द थीं और होंठ पर जैसे बाँसुरी रम गई थी।

बाँसुरी रूकी और वंशीवादक की आँखे खुलीं।

भैया को उस तरह खड़े देख कर उन्होंने हाथ उठा कर आर्शीवाद दिया—“प्रसन्न रहो।”

“पर प्रसन्नता होती क्या है ?” भैया ने बढ़ कर उनके चरणों पर अपना माथा टेक दिया।

भैया उसी नाव पर बैठ गए। और नाव बहाव के साथ धीरे-धीरे पूरब दिशा की ओर चल पड़ी।

काफी दूर बढ़ कर सन्त ने कहा—“प्रसन्नता कर्म में है। कर्म ही प्रेम है, प्रभुभक्ति है।”

भैया के मुँह से निकला—“चोर, चाण्डाल, डाकू, बेईमानी भी तो कर्म करते हैं ?”

“वह कर्म नहीं, प्रतिक्रिया है बेटे।” सन्त ने मुसकराते हुए कहा।

सच, वह मुस्कान ऐसी थी, कि भैया का मन अजब अनिर्वचनीय शान्ति से भर गया। उन्होंने भक्तिभाव से कहा—“महाराज, मैं आप से गुरुमन्त्र लेना चाहता हूँ !”

“बेटा, मैं शूद्र हूँ।”

“जो भी हो, मैं आपसे ही गुरु-मन्त्र लेना चाहता हूँ।”

सन्त चुप हो गए। नाव धार में चल रही थी। सन्त कभी-कभी बीच में जरा-सा नाव की डाँड हिला देते, नाव सीधी हो जाती और फिर वही अगाध चुप्पी।

शाम होने को थी। सूरज बस, डूबने ही वाला था। सन्त के मुँह से निकला—

“कहो, हरे कृष्ण !”

“हरे कृष्ण !”

भैया ने मन्त्र दुहरा कर आँखे मूद लीं। डूबते हुए सूरज को गुरु-शिष्य ने एक साथ प्रणाम किया।

पता नहीं, वह कौन-सा गाँव था, नदी के कण्ठ पर बसा हुआ। वहीं नाव रूकी। गुरु महाराज नाव से बाहर निकले। गुरु-शिष्य गाँव में गए। कई घरों से थोड़ी-थोड़ी भिक्षा ली—कहीं से सूखी रोटी, कहीं से साग, कहीं से भात, कहीं से दाल और सब कुछ उसी एक तुमड़ी में डालते गए। नदी तट पर आ कर गुरु महाराज ने कहा—“प्रसाद लो !”

उसी तुमड़ी में हाथ डाल-डाल कर गुरु-शिष्य भोजन करने लगे। अंजुरी से नदी का पानी पिया। और वहीं तट के बाल पर दोनों विश्राम करने लगे।

गुरु महाराज कहने लगे—“यह जो अन्न हमने पाया है ने, यह भिक्षा नहीं, ऋण है। हम जिससे भी कुछ लेते-पाते हैं, हम उसके कृतज्ञ होते हैं। ऋण मूलधन है, कृतज्ञता है ब्याज। देने से ही इस का भुगतान होता है।”

भैया चुपचाप सुनते जा रहे थे।

“लगता है तुम जीवन भर भागते ही रहे हो बेटा, इस ब्रह्माण्ड में कोई भाग कर कहाँ जायेगा ?” उनका प्रवचन जारी था—“सब कुछ तो यहीं रह जाता है—घुमता हुआ, महारास की तरह सो भुगतान जरूरी है। और कर्म ही कृष्ण हैं। वही तुम हो। तुम्हारी मदद, तुम्हारे सिवा और कोई नहीं कर सकता। न मैं, न मन्त्र, न कोई और।”

यह कह कर गुरु महाराज चुप हो गए। सो गए। भैया वहीं बालू पर बैठे रहे। न नींद, न थकान। एकटक गुरु महाराज का निहारते रहे। गंगा कंकाल-सा वृद्ध शरीर। सफेद जटा और दाढ़ी, हवा में रह-रह कर फहरने लगते। भैया उठ कर नाव में गए। वहाँ बाँसुरी के अलावा कहीं कुछ नहीं था।

ठीक चार बजे गुरु महाराज उठे। नहाया-धोया और फिर वही बाँसुरी बजाने लगे। आँखे मुँदी हुई। मुख पर अजब-सी शान्ति। सुबह बाँसुरी बन्द कर आँखें खोलीं, तब धीरे-से बोले—“हरे कृष्ण।

..... अब विदा !”

भैया ने बढ़ कर पाँव छान लिए।

महाराज ने कहा—“अपने को रोको, मुझमे क्या है !”

भैया चुपचाप नदी के कण्ठ पर खड़े रह गए। गुरु महाराज की नाव नदी की धार में बहने लगी।

भैया ने अपने सारे वस्त्र उतार डाले। धोती आधी फाड़ कर लुंगी की तरह पहन ली। आधे को अँचरे की तरह ऊपर डाला और शेष वस्त्र—बनियाइन, कुरता, जुता निकाल कर उसी गाँव में ले जा लोगों को दे दिए।

साधू भेष में भैया जब अपने गाँव के सिवान में घुसने को हुए, तब उनके पाँव काँप गए। लोग उन्हें देख कर क्या कहेंगे ? इस लिए रात के अँधेरे में वह गाँव में घुसे। सासु जी हाय-हाय करती हुई दरवाजे पर भूत की तरह चक्कर लगा रहीं थीं। और लोग सो गए थे। भैया को देख कर सासु जी एकटक निहारने लगीं—जैसे पहचान न पा रही हों।

“अम्मा !”

भैया के बोल सुनते ही सासु जी वहीं जमीन पर भहरा कर बैठ गई।

“बेटा, तुम साधु हो गए ?”

“हाँ, अम्मा !”

“फिर मेरा क्या होगा ?”

“सेवा करूँगा, अम्मा !”

सुबह हुई। गाँव के लोग भैया पर तरह-तरह से हँसने लगे। सबसे ज्यादा दोनों छोटे भाई। पिता जी भुनभुनाने लगे। खरबुज्जा ने हाथ नचा कर कहा—“हजार चूहे खाय के बिलार भई भक्तिन। हाँ बड़े आए सन्त महातिमा बनि के। बड़े आए ढीड़ा छिपाने, मुहजरे। करम धिस्सा”

उसी कुएँ के पास साधू भैया ने छोटी-सी कुटिया बनाई। गाँव के लोग आते और उनका तरह-तरह से मजाक बना कर चले जाते। गाँव की औरतें कुएँ पर पानी भरने आतीं तो बेमतलब साधू भैया के मुँह लगतीं। न वहाँ भजन हो पाता, न भाव। घर वाले आ-आ कर बोली बोलते और बड़के भैया चुपचाप सहते।

घर से सिर्फ एक वक्त थाली में भोजन आता। भैया उसे खा कर कुटी में बैठे-बैठे धर्मग्रन्थ पढ़ते। और वही गुरुमन्त्र जपते—‘हरे कृष्ण’।

एक दिन भोजन की वह थाली नहीं आई। रात को अपनी थाली लिए हुए सासु जी कुटी में आई, और बताया—“खरबुज्जा ने मना कर दिया है। कहती है, कोई उनका गुलाम लगा है, जो मुफ्त में खाना तुसावै।”

साधू भैया चुप रह गए। दूसरे दिन भी और तीसरे दिन भी। तब सासु जी दूसरे घर गईं। पिता जी और छोटे भाई को बताया। तब तक छोटे भाई की पत्नी ने मुँह फाड़ कर कहा—“तो हम सब का करी, हमें कोई खजाना दिया है क्या ? जहाँ दिए हों वहीं खाएँ—पीएँ !”

सासु जी मुँह पीटती चली आईं। खरबुज्जा ने अगले दिन किया क्या कि शाम को ही पति को भोजन करा के और खुद खा कर टाँग पसार कर सो गईं। माँ को पूछा तक नहीं। सासु जी भैया के पास जा कर रोने लगीं—“यही दिन दिखावे के लिए यहाँ ले आए रहे ?”

साधू भैया निरुत्तर।

तब सासु ने ललकारा—“चलो, अपना हिस्सा-अनाज बाँट लो, हम बनाइब आपन-तोहार भोजन।”

“अच्छा, कलह.....”

साधू भैया की कुटी पर ही वहीं जमीन पर सासु जी बैठी सुबह की प्रतीक्षा करती रहीं। रात भर घर के पिछवाड़े कुत्ते भूँकते रहे।

सुबह हुई। साधू ने अनाज बाँटने को कहा। खरबुज्जा ने कहा “जाओ बाँट लो न !”

साधू अन्दर गए। अनाज की डेहरियाँ खाली पड़ी थीं।

“कहाँ गया सारा अनाज ?”

“खतम हो गया और कहाँ गया।”

साधू सन्न रह गए। सासु ने बताया—“रात को अनाज इस ने खिसका दिया।”

इस बात पर खरबुज्जा ने माँ को गाली दे दी। साधू भैया घर वालों का मुँह देखते रह गए। उस गाली की चोट बूढ़ी-बीमारी माँ के लिए असह्य थी। गाली सीधे उनके कलेजे में ऐसी लगी कि वह आह भी न कर पाई।

पहर भर दिन चढ़ते-चढ़ते साधू भैया हरदेवा शिवाले पर चले गए। सासु जी गूँगे पागल की तरह वहीं धुप में टूटी हुई बैठी रह गईं। दोनों घरों के लोगों में से किसी ने आ कर कुछ पूछा तक नहीं। साधू भैया की वह छोटी लड़की दो बार आयी थी। एक बार दातून और पानी लेकर। दूसरी बार एक गिलास गुड़ का शर्बत बना कर। पर दातून, पानी और शर्बत को अम्मा ने आँख उठा कर भी न देखा।

बस, सुखे वृक्ष की तरह चुप। उस दिन तेज पुरवा हवा चल रही थी। इतनी गर्द-गुब्बार और धुल उड़ रही थी कि लोगों के दरवाजे बन्द थे। सुबह का तीसरा पहर हो गया। सासु जी के ऊपर धूल की पर्त जमती गई। वह बिल्कुल निश्चेष्ट, बैरागी की तरह बैठी रहीं, अचल।

छोटी बिटिया बरामदे में अकेली सो रही थी। सासु जी उठीं। बरामदे में गईं। जगा कर उसका माथा चूमा। अपने गले में से अकेली कुंजी की माला निकाल कर उसके गले में डाल दी। और डण्डे के सहारे झुकी कमरे से बाहर निकल पड़ीं।

“कहाँ जा रही हो नानी ?”

नानी ने मुड़कर देखा और न जाने कैसे दायाँ हाथ हिलाकर न जाने क्या कहा ?

वह मानो एक साँस में दौड़ती हुई अपने कुएँ की जगत पर गईं। झुक कर अपना डण्डा रखा। और दूसरे ही क्षण कुएँ में कूद पड़ीं।

बिटिया चिल्लाई। पुरवा हवा उसकी चिल्लाहट को अजगर साँप की तरह लीलती चली गई। वह अपने घर का बन्द दरवाजा पीट-पीट कर गुहार मचाने लगी। आस-पास के लोग दौड़े। शोर सुनकर खरबुज्जा निकली। दौड़ी कुएँ के पास गई। लोग कुएँ में उतर रहे थे।

खरबुज्जा उल्टे पाँव घर लौटी। माँ के पलंग के नीचे से काठ का बक्सा खींचा। हथौड़े से ताला तोड़ा। रूपए निकाले। अपने बक्से में बन्द किए और तब बड़े इत्मीनान से कुएँ के पास गई और माँ की लाश पर गिर कर रोने लगी।

साधु भैया आए ! ज्वालामुखी की तरह फूट पड़े। अपनी कुटी में आग लगा दी। अपनी कण्ठी तोड़ डाली।

बोले—“पुलिस को रिपोर्ट दो, इसी खरबुज्जा और इसके पति ने अम्मा को कुएँ में ढकेला है।”

पर छोटी बिटिया इससे पहले ही गाँव वालों को चश्मदीद बात बता चुकी थी। पर साधु भैया अपनी बात पर अटल थे—“जो भी हो, मैं साबित करूँगा और इन दोनों को फाँसी के तख्त पर चढ़ाऊँगा।”

गाँव भर के लोग भैया को मानते रहे। रात भर वह लाश के चारों ओर परिक्रमा करते रहे। सुबह पुलिस आई।

दरोगा ने कहा—“फिर तो लाश का पहले ‘पोस्टमार्टम’ होगा।”

पोस्टमार्टम का नाम सुनते ही भैया को अचानक याद आया सासु जी का वह चेहरा, जब शहर में डाक्टर ने दवा की सुई लगानी चाही थी और वह बच्चों की तरह डर कर उन के पैरों से चिपक गई थीं।

भैया ने पंचों की बात मान ली। दरोगा सौ से कम पर नहीं मान रहा था। बिटिया ने गले से कुंजी की माला निकाल कर पिता के हाथों में रख दी। वह घर में गए। अम्मा का कमरा खुला था। बक्सा टूटा पड़ा था।

‘यह क्या हुआ ? वही तो, जो तुम ने चाहा। मैंने कब चाहा ? चाहने के अलावा और किया ही क्या ? नहीं , नहीं ऐसा मत कहो। इसमें कहने की क्या बात। मैंने सब कुछ भलाई के लिए किया। सभी ऐसा कहते हैं। अम्मा ? रोओ नहीं। सोचने और करने में जो फासला है न, वही तो दुनिया है।’ साधु भैया उस शून्य में जैसे अम्मा से बातें करते रहे।

पाँच सौ रूपए पर दो बीघे खेत गिरवी रखकर, भैया ने किसी तरह सारा किरिया-करम पूरा किया। ब्रह्म भोज की जगह उन्होंने आसपास के साधुओं का भण्डारा दिया। इस पर परिवार के लोगों और पास-पड़ोस के ब्राह्मणों से उनका झगड़ा हुआ, पर वह झुके नहीं। ठाठ से साधुओं का भण्डारा हुआ और दो रात एक दिन साधुओं का गोल खंजड़ी-तम्बूरा बजा-बजा कर गाता रहा।

सासु के बाकी खेत दो हजार में गिरवी रखकर भैया ने छोटी बिटिया की शादी की—बिल्कुल कच्ची उमर में। न जाने क्या जल्दी मची थी उनको।

अब उस गाँव-घर में साधु भैया का ऐसा कोई भी नहीं रह गया था, जिसके नाते वह वहाँ रहते। कहीं कोई नहीं। कहने के नाम पर सासु जी के लिए बनवाया हुआ वह घर था और वह कुआँ। अपने हिस्से के छह बीघे और हरख बाबा के वे खेत इतनी माया थी अभी।

हाँ, यह सब माया ही तो है।

साधु भैया यही कहते और न जाने क्यों अपने उन्हीं खेतों की ओर निहारने लगते। और उस शून्य में उन्हें अक्सर मायामृग दौड़ते हुए दिखाई पड़ते . . . दुलारी . . . संतोला . . . मुसे . . . सासु . . . । फिर एक हँसी सुनाई पड़ती।

उन्होंने इस बार गाँव के बाहर कुटी बनाई ! वहीं अपने हाथ से एक वक्त भोजन बनाते और बाकी समय गाँजा-भाँग पीते। और अपनी सूनी नजरों से उन्हीं दौड़ते हुए मायामृगों को देखते दिन में रात में, भूख में, नशे में, नींद में, भजन में।

घर वाले उन्हें देखकर चुपचाप नफरत से भर जाते। गाँव के लोग भी उनका मजाक उड़ाते। पर अब न जाने क्यों, वह अपना गाँव-जवार छोड़कर न कहीं जाते, न आते।

एक रात सपने में उन्हें गुरु महाराज दिखे। उन्होंने पूछा—“तेरा कर्म अब पूरा हो चुका, क्या ? क्या हैं तेरे कर्म, कभी सोचा ?

याद रख महाभारत के बाद हमारे कृष्ण का क्या हुआ था ?”

सुबह हुई। साधु भैया तुमड़ी उठाए उत्तर दिशा की ओर चल पड़े। आगे—पीछे वही मृग दल। वही शुन्य... वही थकान—वही निरुद्देश्य कदम। मृग दौड़ रहे थे... कहीं कोई हँस रहा था, कोई बाँसुरी बजा रहा था।

पहला तीर्थ वहीं अयोध्या। जन्माष्टमी का मेला खत्म हुआ था। उसी दिन साधु भाई अयोध्या में पहुँचे थे। सरजू नहा कर हनुमान गढ़ी में दर्शन करने जा रहे थे। रास्ते में अचानक वह रोती हुई औरत मिली थी। एक बच्चा अंक में, दूसरा उँगली पकड़े हुए।

वह तपेदिक की मरीज थी। पति उसे मेले में छोड़ कर भाग निकला था।

“कहाँ की रहने वाली हो ?” बड़के भैया ने पूछा।

“सोहनगंज, थाना मालीपुर, जिला रायबरेली।”

“कौन जात ?”

इस सवाल को सुनते ही रोती हुई औरत सहसा चुप हो गई। माथे पर आँचल ठीक किया। और एक अजब मर्मभेदी नजर से साधु को देख कर उसने जमीन पर नजर गड़ा ली। साधु भैया एकटक उसे निहारने लगे। और सिर से पाँव तक उस स्त्री में कुछ टटोलने लगे। एक बिन्दू पर आकर वह मूर्ति बन गए।

दो मूर्तियाँ आमने—सामने।

“कौन हो तुम ?”

स्त्री मूर्तिवत्। साधु भैया के भीतर कुछ थर—थर काँपने लगा। स्त्री जाने लगी। वह परछाई की तरह पीछे—पीछे।

रायबरेली वाली सड़क पर चल पड़े। भैया कभी छोटे बच्चे को गोद में लिए हुए चलते, कभी दूसरे बच्चे को भी पीठ पर लाद लेते। औरत से चला न जाता। थोड़ी—थोड़ी दूर पर वह बैठ जाती।

रास्ते में भिक्षा माँग—माँग कर भैया उन्हें खिलाते—पिलाते। इस तरह चौथे दिन उन्हें लिए—दिए सोहनगंज जा पहुँचे।

“अरे फुलदेई, कहाँ थी तू ?”

पति ने उन्हें देखते ही आश्चर्य किया। साधु भैया के मुँह से निकला—“हरे कृष्ण !”

पति बातें बनाने लगा, तो साधु भैया ने डाँट कर कहा—“सच बोल वरना श्राप दे दूँगा।”

पति डर गया। अपराध कबूल कर लिया। पर दूसरे दिन सुबह उसने हाथ जोड़ कर मन की बात कही—“महाराज, फुलदेई को अब अपने साथ रख कर क्या करूँगा। मैं गरीब आदमी...।”

साधु भैया का मर्म चिरता चला गया।

यह स्त्री कौन है ? क्यों है ?

गुरु महाराज ने बताया था—यह संसार तर्क से नहीं जाना जा सकता।

रात को स्त्री ने खून की कै की। साधु भैया ने तब देखा—उस रक्तंजित मुँह के पीछे वही दुलारी है। यह कैसे हो सकता है ? वह जीवित है। यहाँ कैसे ? स्त्री निश्चेष्ट खाट पर पड़ी थी। दोनों बच्चे जमीन पर पड़े थे। भाई अपने अंगोछे से जमीन पर गिरे खून को पोंछने लगे। अचानक उस स्त्री का हाथ भैया के सिर पर आ टिका। सिर से पाँव तक जैसे कोई नदी बह गई। आंसुओं की नदी... नहीं वैतरणी... नहीं... नरकधर... नहीं चैइता के बोल... फागुन के झूमर... और सब मिल कर शत—शत कण्ठों से एक करुण राग—“बालम परदेसिया, अब की सावन घर आ जा...।”

साधु ने दोनों हाथों से मुँह गाड़ लिया। अचानक उस स्त्री के होंठों से हँसी फूटी। भैया पसीने से तरबतर हो गए।

कौन हो तुम ?

तुम कौन हो ?

एकटक एक दूसरे को देखने लगे। स्त्री की बाईं आँख से आँसू की एक बूँद उस के गाल पर ढुलक पड़ी। पर उसके होंठों पर थरथरा आया :

चिंउटी चढ़ी पहाड़ पर कानों में हाथी लटकाए।

एक अचम्भा हमने देखा नैया बिच नदिया डूबी जाए।

अज्ञान का जो नगर भैया ने बसा रखा था, उसकी दीवारें काँपने लगीं। उन्हें लगा धर्म—दर्शन की झूठी ईंटे हवा में उड़ रही हैं। उन्होंने प्रश्न करना चाहा—मेरा कर्म मेरी बुद्धि से अलग क्यों है ? तभी उस स्त्री ने

अजब चितवन से भैया को देखा . . . उन्हें लगा—वह एकदम नंगे होकर भाग रहे हैं . . . भाग रहे हैं . . . सारे मायामृग . . . हंस बन कर उनके पीछे—पीछे उड़ रहे हैं।

भैया ने कहा—‘तुम कौन हो?’

‘तुम कुछ और क्यों नहीं पूछते?’

‘तुम क्यों नहीं कुछ पूछती?’

‘क्यों, किस से? किस लिए?’

फिर दोनों चुप हो गए। सुबह हो गई।

स्त्री ने हाथ जोड़ कर कहा—प्रणाम!

साधू भैया के हाथ न जाने कितनी देर तक जुड़े रहे।

‘हरे कृष्ण’ यही कह कर साधू उस गाँव से बाहर निकले।

रायबरेली से फैजाबाद। फैजाबाद से अपना जिला—अपनी तहसील। वह पैदल चल रहे थे। उनसे आगे चला नहीं जा रहा था। लम्बा मैदान। तेज धूप। सामने दो पेड़ दिखाई दिए। पहले सुखा पेड़। आगे हरा—भरा छायादार। हरे—भरे पेड़ को एकटक निहारने लगे।

अगले दिन साधु अपने गाँव पहुँचे। घर—गाँव वालों ने मजाक करना शुरू कर दिया—“आई गए महातीरथ करके! . . . हाँ नहीं तो . . . का! . . . चारों धाम”

पर साधु भैया बिल्कुल ही नए तन—मन से इस बार घर लौटे थे। वह सारे अपमान चुपचाप सह लेते। छोटे भाइयों के बच्चे खेलाते। खेती—गृहस्थी के कामों में हाथ बँटाते। पर अब कोई उन्हें कोई जिम्मेदारी देने को तैयार नहीं। वह सब को खुश रखना चाहते, पर कोई उनसे खुश नहीं रहता। वह सब की चापलूसी करते पर सब उन्हें शक की नजर से देखते।

घर वाले आपस में फुसफुसाते—“अब फिर कुछ बेचने—फूँकने आया है अभागा . . . निरवंसी . . .”

अब कोई नहीं चाहता कि साधु भैया यहाँ रहें। सब उनसे कटते और उन्हें तरह—तरह से काटते। फिर भी साधु हर वक्त उसी साधना में, कर्म में लगे थे, सूखा पेड़ हरा हो जाए उसमें फल—फूल आ जाएँ।

एक दिन साधु मजदूरों से घूर की खाद सारे खेतों में डलवा रहे थे। शाम को नहा—धो कर जब कुँए की चौकी पर संध्या—भजन करने लगे, तभी उनके कानों में खरबुज्जा और पिता जी की फुस—फुसाहट सुनाई पड़ी—“साधु ने अपने हिस्से के खेत में ज्यादा खाद डलवाई है।”

जब कि सचाई यह थी—अभी उनके खेतों में खाद पड़ी ही न थी।

साधु भैया चुपचाप भजन करते रहे।

अचानक खेलते हुए बच्चों की सामुहिक आवाज आई—

साधु—सवादू के तीन मेहरी

एक कूटै, एक पीसै, एक भाँग रगरी !

एक ओर भजन, दूसरी ओर बच्चों का यह गान, भैया को हँसी आ गई।

छोटे भाई के तीनों बच्चे बेहद गन्दे रहते। न कोई उन्हें नहलाता, न कपड़े बदलता। साधु ने बच्चों को कुँए पर खूब मल—मलकर नहलाया। उन्हें साफ कपड़े पहनाए। अगले दिन सबसे छोटे की नाक बहने लगी।

छोटी बहू ने साधु भैया को सुना कर कहा, “कहिदे रही हूँ, हाँ अगर मेरे बच्चे को कुछ हो गया तो . . . बड़े चले थे नहलाने, अभागा कहीं के !”

छोटका की यह बात भैया के दिल में छुरे की तरह आर—पार हो गई। घर पर उनका एक क्षण भी रहना मुश्किल हो गया। अभागा शब्द का अर्थ अचानक उनके बाहर भीतर खिंच गया। उनका दम घुटने लगा। घर से उन्हें भगाने के लिए ही यह सग कहा सुना और किया जा रहा है, यह वह समझ रहे थे।

घर से फिर चले जाने की बात सोचते ही उन्हें वह सोहनगंज का गाँव . . . वही स्त्री . . . वही . . . याद आने लगती। वह सूखा पेड़ उनके भीतर काँपने लगता। वह जितना ही अपने आप से लड़ते, उतना ही उन्हें वह सूखा पेड़ सच दिखाई देने लगता।

और एक दिन उन्हें फिर अपना घर—गाँव छोड़ देना पड़ा। गाँव के कई आदमी बम्बई में नौकरी करते थे। उनके पते उन्हें याद थे। वह बम्बई चल पड़े। रास्ते में रेल से न जाने कितनी जगह उतारे गए। पर उनके दिल

में यह बात घर कर गई थी कि वह बम्बई में गाँव वालों की तरह कमाई करेंगे और फिर अपने आपको हरा-भरा कर के रहेंगे।

काफी दिनों बाद बम्बई पहुँचे। पूछते-पाँछते गाँव वालों से मिले। एक हफ्ता एक खोली में, दूसरा हफ्ता दूसरे की खोली में। गाँव वालों से धीरे-धीरे फिर जवार-जिला वालों से मेल-जोल, उठना-बैठना। और बड़के भैया को इस तरह वह सारा संकल्प ही भूल गया कि वह क्यों यहाँ आए हैं ?

बस, आए हैं तो आए हैं। खाना-पीना हो रहा है तो हो रहा है।

बम्बई में पूस, माघ और फागुन, ये तीन महीने बीत गए। इस बीच धर्म और तीर्थ-यात्रा के नाम पर उन्हें साढ़े तीन सौ रूपए मिले। एक मन ने कहा—बदरीनाथ की यात्रा पर चलें। दूसरे मन ने कहा, घर वालों के नाम रूपए मनीआर्डर कर दें। यही सब सोचते-विचारते वह एक दिन फिर अपने गाँव लौट आए। सारे बच्चों, बहुओं, भाइयों के लिए कपड़े। पिता जी के लिए धोती—कुरता।

मगर दो-चार दिनों बाद फिर वहीं बातें—विष भरी बोलियाँ। एक सन्ध्या समय कुँ की उसी चौकी पर बैठे हुए जब वह पूजा-पाठ करने लगे तब लगा मानों पूजा-मन्त्र सब एकाएक भूल गए हों। एक ही बात उनके मन में उठती—तू क्यों बार-बार इस तरह यहाँ लौट आता है ? यहाँ ऐसा क्या है तेरा ? तभी भैया को वह कथा याद आई : एक बहुत ही खूबसूरत, भाग्यवान तोता था। बहेलिए उस तोते को पकड़ते। राजा के हाथ मुँह माँगी रकम पर बेज आते। तोते को सोने को पिंजड़े में रखा जाता। उस पर पहरेदार लगाए जाते। पर न जाने कैसे वह सुगना उड़ जाता। बहेलिए उसे फिर पकड़ते। दूसरे राजा के हाथों बेच आते। वहाँ से सुगना फिर उड़ जाता। इस तरह एक-एक कर सारे राजाओं ने उसे खरीदा और अंत तक वह किसी के हाथ न लगता। बहेलिए मालामाल हो गए। एक राजकुमार था। वह एक राजकुमारी के पीछे दीवाना था। राजकुमारी ने राजकुमार से उसी तोते को पकड़ ले आने की शर्त बाँधी। राजकुमार ने बताया वह तोता पकड़ में तो आता है, मगर उड़ जाता है। तब उस राजकुमारी न उस तोते का रहस्य बताया। सात समुन्द्र बीच में मूँगे का एक द्वीप है। उस द्वीप पर चन्दन का एक पेड़ है। पेड़ पर एक सतरंगी तीतली है—वही है तोते की जान। अगर कोई उसी तीतली को पकड़ ले आए तो वह सुगना उसके हाथ लगे।

राजकुमार, राजकुमारी के प्रेम में पागल तो था ही। वह उसी सात समुन्द्र बीच में पहुँचने के लिए चल पड़ा। चलते-चलते महीनों, साल गुजर गए। राजकुमार सात समुन्द्र पार कर उस द्वीप में जा पहुँचा। चन्दन के पेड़ पर साँप-ही-साँप। बीच में वही सतरंगी तीतली। राजकुमार ने बाँसुरी बजा कर सारे साँपों को धीरे-धीरे मस्त कर दिया। फिर उसने पेड़ पर चढ़ कर वह तीतली पकड़ ली।

तीतली को डिब्बे में बंद कर राजकुमार भागा। ऊपर वही सुगना कें-कें-कें-कें करता हुआ उड़ने लगा। चक्कर काटता रहा।

राजकुमार ने तोते की जान ला कर राजकुमारी को दे दी। तब से वह तोता कहीं भी रहता, बार-बार लौट कर उसी राजकुमारी के ही पास आता। राजकुमारी उसी से तरह-तरह के काम लेती। उसे गुलाम समझती। कभी-कभी उसके पंख नोच कर अपनी वेणी में गुँथती।

साधू भैया कुँ की उस चौकी पर चुपचाप बैठे हुए सोच रहे थे—कहाँ है मेरी जान इस घर में ? मैं क्यों इसी घर से बँधा मँडरा रहा हूँ ?

कहाँ है वह सतरंगी तीतली ?

भैया की आँखों के सामने वही स्त्री थर-थर काँपती। वही मायामृग दौड़ते। वही हंस उड़ते। और वह हाथ मल कर मानो कोई धूल झाड़ते। पर धूल उनके तन-बदन में जैसे और चिपकती।

हाँ, हाँ, धूल ही तो !

वही धूल ! जिसके कारण कुछ नहीं सूझता।

इसी धूल में कहीं वह तीतली उड़ रही है। पकड़ो पकड़ो ।

एक दिन उन्होंने संकल्प किया, अब वह सदा के लिए घर छोड़ देंगे। कभी यहाँ वापस नहीं लौटेंगे—'मरनो भलो विदेस को जहाँ न अपनो कोय। माटी खाय जनावराँ, महा महोत्सव होय।'

साधू भैया बदरीनाथ की यात्रा पर चल पड़े तब चैत का आधा महीना बीता था। सुबह चार बजे घर से निकले थे। गाँव के बाग से कोयल की आवाज आई। कटारी बाई का गाय़ा हुआ वह चड़ता मन में चमक पड़ा—

चइत मास बोले रे कोइलिया हो रामा चइता रे मासे।

साधु भैया उस शून्य में खिस-खिस हँसने लगे। वह अकेले, वृद्ध की तरह धीरे-धीरे चल रहे थे और जब बहुत थक जाते तब उसी अयोध्या सोहनगंज की तरफ मुँह कर सुस्ताने लगते।

सीधे हरिद्वार गए। वहाँ से ऋषिकेश, लछमन झूला। बदरीनाथ यात्रा पर साधुओं का एक झुण्ड पैदल जा रहा था। उसके साथ ही भैया चल पड़े। तीसरे दिन, काली कमली वाले के पड़ाव पर उन्हें एक पंगुल यात्री मिला। पंगुल के दोनों पैर जाँघ से चिपके थे और वह दोनों हाथों में लकड़ी बाँधे उसी के सहारे मेंढक तरह चलता। भैया साधुओं को छोड़कर उसी पंगुल के साथ यात्रा करने लगे। पंगुल मुश्किल से दिन भर में पाँच-छह मील घिसट पाता और जहाँ शाम हो जाती, वही रुक जाते। खाने के नाम पर बस, वही चबैना और सत्तू।

एक जगह रात में उनके करीब जंगली रीछ का एक जोड़ा आया था। भैया इतने भयभीत हुए कि उन्हें बुखार चढ़ आया। पर पंगुल रीछ के जोड़े को बार-बार प्रणाम करता रहा। थोड़ी देर बाद रीछ के दो छोटे-छोटे बच्चे दिखे थे। माँ-बाप बच्चों के साथ खेलते रहे। उन्हें शिकार करने की शिक्षा देते रहे। बुखार से तपते हुए घिग्घी बाँधे हुए भैया रात भर वही रीछ-क्रीड़ देखते रहे।

सुबह हुई, पंगुल ने कितना समझाया, पर भैया आगे चलने को तैयार न हुए। तब पंगुल ने कहा—“ईश्वर ने तुम्हें पाँच कार्मेन्द्रियाँ दी हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं, किस लिए ? इन इन्द्रियों से तुमने अब तक क्या-क्या काम लिए ?” भैया ने अपने जीवन-भर के काम बताए। पंगुल ने तब हँसते हुए कहा—“इनमें से एक भी वह काम नहीं, जो मनुष्य को निष्काम बनाए।”

भैया पंगुल से शास्त्रार्थ करने लगे। पंगुल हँसता रहा। उसमें न जाने कैसी दिव्य-दृष्टि थी। वह मानो भैया के जीवन को आर-पार देखता हुआ बोला—“तुम सदा अपनी जिम्मेदारियों से भागते रहे हो। जो कर्म सामने आया, उसे छोड़कर तुम सदा दूसरी ओर मुड़े। मुड़ कर सदा पीछे ही जाना होता है। तुम सरल थे, पर पानी की तहर नीचे-ही-नीचे बहते गए। मनुष्य का पानी तो ऊर्ध्वमुखी होना चाहिए भाई !”

इसी तरह न जाने कितनी-कितनी बातें करता हुआ वह पंगुल भैया के संग-संग आगे खींचता गया। उसके सहारे भैया जोशी मठ तक पहुँच गए। पर वहाँ से आगे चलना उनके लिए असम्भव हो गया।

तब पंगुल ने नाराज होकर कहा—“तुम्हें हरदम दूसरों का सहारा चाहिए। दूसरे के धन का, मन का, तन का। पर याद रख, तू ने जिस-जिस का सहारा लिया है, वह जिन्दा नहीं बचा। क्यों ? तू अब भी जानना चाहता है ?”

“हाँ, क्यों ?” भैया रो पड़े थे।

“सहारा परस्पर का होता है,” पंगुल ने कहा—“तूने सदा लिया है, देना सदा भूलता रहा है।”

“ऐसा क्यों ?” भैया ने पूछा।

“तुझे आज तक पता नहीं, तु चाहता क्या है ? तू है क्या ? तू ने आज तक अपने से नहीं पूछा।”

भैया चुप हो गए।

पंगुल ने मुसकरा कर कहा—“जब गृहस्थ था, तब साधू बन गया। जब साधू हुआ तब गृहस्थी याद आने लगी। गुरु, मन्त्र, कृष्ण, घर-समाज उसके लिए मूल्यवान है जो स्वधर्म जानता-मानता है, नहीं तो ये सब शत्रु हैं।”

यह कहकर पंगुल अकेला आगे चल पड़ा। भैया वहीं खड़े-खड़े न जाने क्या देखते रहे। उनमें न जाने क्यों क्रोध उमड़ने लगा। अपने प्रति और सबके प्रति। लगा, सबने उन्हें धोखा दिया है—यहाँ तक कि उस पंगुल ने भी।

पंगुल को मारने के लिए उन्होंने पत्थर का एक टुकड़ा उठाया। हवा में उनका हाथ काँप गया। पत्थर का घूर-घूर कर देखने लगे। उसमें से न जाने कैसी आकृति झलक रही थी। फिर उसे नीचे शून्य में फेंक दिया।—अथाह नीचे बहती हुई नदी में से एक आवाज आई—निःशब्द आवाज।

भैया की यात्रा पीछे मुड़ गई। रास्ते में जाते हुए तीर्थयात्रियों से जब उनकी आँखे टकरातीं, तब वह शर्म से अपना माथा झुका लेते। पर धीरे-धीरे वह बदल गए। उनमें अजब विश्वास पैदा हुआ—धर्म, तीर्थ, ईश्वर,

देवता सब ढकोसला है। सब अन्ध-विश्वास है। सच्चा है तो केवल मनुष्य का जीवन, उसके भौतिक अधिकार। वह स्वयं।

ऋषिकेश में आ कर उन्हें कै और दस्त होने लगे। सेवाश्रम के अस्पताल में डाक्टर ने बताया—“लीवर खराब है। इस रोग के अनुसार परहेजी भोजन करना होगा।”

एक हफ्ते सेवाश्रम में रह कर उनकी हालत सुधर गई। पर उनके पैरों में से सूजन नहीं जा रही थी।

जेठ की एकादशी को वह अपने घर वापस पहुँचे। गाँव-घर के लोग उनसे कुछ पूछते तो वह बिगड़ खड़े होते। बात-बात में गाली दे बैठते।

घर वालों से साफ कह दिया—“मैं घर का सबसे बड़ा लड़का हूँ। मैंने घर के लिए इतना सब किया है। घर बनवाये हैं, जायदादें खरीदी हैं, भाइयों की शादियाँ की हैं... नौकरियाँ दिलाई हैं—मेरा अधिकार है। मैं अपने अधिकार ठाठ से भोगूँगा। अधिकार के लिए लड़ूँगा। जो मुझसे टकराएगा, उसे चूर-चूर कर दूँगा।”

बड़के भैया के इस नए रूप को देख कर सब-के-सब सहम गए। न पूजा। न पाठ। बस, बैठे-बैठे सुबह-शाम गाँजा और इच्छानुसार भोजन।

आषाढ का पहला पानी बरसा था। भैया ने आज्ञा दी—“मैं आज पूड़ी-सब्जी, चिउड़ा-दही खाऊँगा।”

गाँव के एक बुजुर्ग ने कहा, “हे मरदवा तू नहीं, तोहार ‘लीवर’ खराब है, तू ई भोजन करबो?”

भैया ने कहा—“सब पोपलीला है ससुरी, मुझे कोई रोग-धोख नहीं है।”

खूब छक कर भोजन किया। आधी रात के बाद से पेट फूलने लगा और वह चिलम के बाद चिलम गाँजा पीते रहे। पेट में हवा गूँजती तो वह ईश्वर को भद्दी-सी गाली देते। फिर उन्हें थोड़ी-सी शान्ति मिल जाती। पूरे तीन दिनों तक उन्हें दस्त नहीं हुआ। पेट उसी तरह सण्डमण्ड। कच्ची धुँधार डकार।

ग्राम-विकास-केन्द्र के डाक्टर ने आकर ‘एनीमा’ लगाया, तब उनको दस्त आना शुरू हुआ। पर वह अण्डबण्ड खाते-पीते रहते, और ‘लीवर’ की दशा बिल्कुल बिगड़ती गई। सारा बदन पीला पड़ गया। पेट और मुँह फूल गया। लगता, पेट में कितना ही अन्न भरा हुआ है। पेट में इतनी सूजन आ गई कि वह झलझल चमकने लगा। भैया को लोग अस्पताल ले जाने के लिए कहते तो वह गालियों के बीच से कहते—“सब चाहते हैं, मैं मर जाऊँ। अस्पताल ले जा कर मुझे जहर देना चाहते हैं साले। यह नहीं जानते कि मैं सब सालों को मार कर रहूँगा।”

दिन-रात दरवाजे के मड़हरे में तखत पर पड़े रहते और सबके प्रति जहर उगलते। न जाने कब की पुरानी से पुरानी बातें उनके दिमाग में आतीं और बस गालियों का अध्याय शुरू हो जाता। बच्चे भी उनके पास नहीं फटकते। डर के मारे दूर से ही छिप कर देखते और उनके लाख पुकारने पर भी वे पास नहीं आते।

तब वह किचकिचाते। कलजुगी बच्चों को सरापते। बस, अक्सर उनके पास वही सूरा चमार आ कर बैठा रहता। कभी-कभार उधर से कोई चमाईन, पासिन गुजरती तो आवाज देते। औरतें आतीं, उनके फूले हुए पैरों को सहलाती हुई कहतीं—

“कोई भूत-पिसाच लाग गया है भइया के तन पर।”

एक दिन सुबह से शाम तक सावन की बरसा होती रही। साधू का पेट वहीं बिस्तर पर ही छूट गया। खरबूज्जा ने साफ मना कर दिया—“मैं किसी की मेहरी नहीं जो पैखाना-पेशाब धोऊँ।”

छोटी बहू ने भी कह दिया—“सड़े, मैं क्या करूँ?”

बड़के भैया के दिमाग में आया—पास में अगर धन हो, तो लोग झख मार कर सेवा करेंगे—उसी धन के लालच से। हाँ, बिल्कुल। भैया ने अपने हिस्से के दो बिघे खेत पाँच सौ रूपए में गिरवी रख दिए। घर वाले झगड़ते-बिगड़ते रह गए। उसी तखत पर लेटे-लेटे बड़के भैया सौ-सौ के नोट दिखाते और प्रेत की तरह खिलखिलाकर हँसते।

उस दिन भैया को बुखार भी चढ़ आया था। कई दिनों से सावन की झींसी पड़ रही थी। आसमान काले बादलों से भरा पड़ा था। सुबह-ही-सुबह खरबूज्जा ने न जाने क्या ऐसा भैया को कह दिया कि वह क्रोध से पागल हो गए।

उन्होंने हुक्म दिया—“तुम लोग मेरा घर अभी, इसी वक्त तुरन्त खाली कर दो, वरना आग लगा दूँगा।”

उसी झकझोर वर्षा में खरबूज्जा और उसके पति राते-कलपते हुए घर खाली करने लगे। पुराने घर में जाने लगे। सुबह से शाम तक सारा सामान ढोया गया। उन्हें दुख और विपत्ति में डाल कर भैया को जो सुख मिला, उसका बयान नहीं किया जा सकता।

उस सूने घर में फिर शाम को बड़के भैया का तखत बिछा। अब तक करीब सौ रूपए खर्च हो चुके थे। वही चार सौ रूपए, तुलसी की एक माला, छोटा-सा त्रिशूल, झोले में कुछ पूजा-पाठ की सामग्री और एक तुमड़ी—बस, इतनी ही चींजे उनके आस-पास थीं।

हाँ, एक चीज भैया ने और देखी उस रात—मृत्यु। काले आसमान से उतरी थी आँगन में चुपचाप और होंठों पर उँगली रखे हुए दरवाजे पर आ खड़ी हुई। उसके पैरों की आहट से भैया का कलेजा काँप उठा। न जाने कहाँ से हिम्मत जुटा कर सिद्धहस्त शिकरी की तरह उन्होंने त्रिशूल उठाया और फेंक कर मारा उसी दहलीज पर। लगा, मृत्यु झनझन-झनझन करती हुई भाग गई। वह जोर-जोर से घर वालों को पुकारने लगे। कोई न आया। सारा बिस्तारा गन्दा हो गया था। दुर्गन्ध कमरे भर में फैली थी। बुखार इतना बढ़ गया था कि वह करवट भी नहीं ले सकते थे बन्द आँखों के भीतर आँखे तक रही थीं। बन्द मुख के अंदर वाणी जग रही थी। क्रोध और नफरत से सारा रक्त खौल रहा था। कभी सोचते जहर मंगा कर कुएँ में डाल दें—सारे घर वाले मर जाएँ। कभी ख्याल आता, क्यों न पुलिस को घूस दे कर सब को हथकड़ी पहना दें ?

यही सब सोचते-सोचते सुबह हो गई। पिता जी और मझले भाई आए बिस्तारा बदलने, दवा-सेवा देने। भैया ने उन्हें भद्दी-भद्दी गालियाँ दीं। उन्हें अपने पास तक नहीं आने दिया। पूरा दिन उसी नरक में पड़े रहे।

उन्हें न अब अपने रोग की चिन्ता रह गई थी, ने अपने जीवन की ! बस, एक ही चिन्ता उनमें सुलग रही थी—कैसे एक-एक से बदला लूँ। कैसे ? जैसे जिन्दा गिरई मछली आग में डाल दी जाए, और बेतरह तड़पे, ठीक उसी तरह साधू भैया अपनी मृत्यु शय्या पर तड़प रहे थे।

रात के अंधेरे में, ठीक उसी वक्त दरवाजे पर वही काली परछाई फिर चमकी। वही पदचाप। वह एकटक उसे निहार रहे थे। उसकी आँखों से आँखें बाँधें अचानक वही स्त्री-स्वर :

तुम मर भी नहीं सकते ?

फिर उसी ने ही जवाब दिया—क्योंकि तुम जी नहीं सके।

बड़के भैया ने उस अदृश्य को गाली दी। तब जैसे गुरु महाराज बोले हों—“अब गाली देने से क्या होगा बेटा ? ... सोच तेरे जीवन में यह जो हुआ, क्यों हुआ ? इसका जिम्मेदार कौन ?”

भैया के पेट में इतना असह्य दर्द होने लगा कि वह अचेत होने लगे ; अंतड़ियाँ मानो फट रही हों। सिर में जैसे कोई गर्म सलाखें डाल रहा हो।

तड़पन, कराह, प्रलाप—यह सब अगले चौबीस घन्टों तक चलता रहा। वैद्य, हकीम, डाक्टर, सभी आ-आ कर चले गए। सब वही एक ही बात कह गए—“मरीज अब तक जिन्दा कैसे है ? इसके जीने की कोई वजह नहीं।”

पिता जी संध्या समय गरुदान कराने के लिए पंडित ले आए। बड़के भैया मुट्ठी बाँधे रहे। गंगा-जल मुंह में डाला जाने लगा ! उन्होंने नफरत से थूक दिया।

“बेटा, अब ईश्वर का नाम लो” पिता ने कान में कहा।

भैया नफरत से बोल—“हट जाओ मेरे सामने से।”

रात को उसी समय वर्षा शुरू हुई, जब मौत आँगन में उतर कर दहलीज पर आ कर खड़ी होती थी। भैया उसके आने की प्रतीक्षा करते रहे। वह नहीं आई।

पर थोड़ी देर बाद लगा—कमरों में कुछ लोग चुपचाप आकर खड़े हैं—दुलारी, ससुर साहब, सासु जी, संतोला और मूसे। वह शून्य में हाथ फैला-फैला कर उन्हें छूना चाहते। लगा किसी ने उस शून्य में उनका हाथ पकड़ लिया।

“कौन ?”

वही पंगुल। वह कह रहा है—“बोलो, तुम किस से बदला लेना चाहते हो ?”

“सब से ?”

“क्यों ?”

भैया ने हाथ खींच लिया। तब लगा, किसी ने माथे पर हाथ रख दिया है। वही रायबरेली..... सोहन गंज की फुलदेई नहीं नहीं, वही दुलारी, माथे पर हाथ रखे, उसी सुगाना की कहानी कहने लगी।

भैया ने पूछा—मेरी वह तितली कहाँ है ?

दुलारी बोली—जीवन की हार तुम्हारी तितली है साधू।

भैया ने लम्बी साँस ली। जैसे कोई पत्थर टूटा हो उनके भीतर। पेट का दर्द कम होने लगा। आसमान में सफ़दे हंस उड़ने लगे। भीतर की जकड़न एकदम ढीली हो गई।

आंगन में वर्षा का संगीत अच्छा लगने लगा। लगा कोई भीगता हुआ आया है—संतोला ? सासु जी ? मूसे ? ... दुलारी ? ... कौन है ? न जाने कौन ? ... पर कोई है। अंधेरे में माथा झुकाए खड़ा है, बेहतर भीगा हुआ। कह रहा है—छोटे भाइयों का क्या अपराध ? तुमने उन्हें अच्छा बनाने की कोशिश कब की ? उन्हें न पढ़ने दिया, न कुछ जानने—सीखने दिया। और खरबुज्जा ? वह तुम्हारी ही रचना है। सबने मूल में तुम्हीं हो, सब तुम्हारे ही रूप हैं।

भैया के मुँह से एक अजीब कराह निकली। फिर धीरे—से कहा हरे कृष्ण ! काँपता हुआ दाहिना हाथ सिरहाने गया—तुलसी की माला में उँगलियाँ जैसे काँपने लगीं।

अचानक दरवाजे पर छोटका भैया आया। टार्च जला कर देखा—बड़के भैया सो रहे हैं। धीरे—धीरे, दबे पाँव बढ़ा। भैया छिपी आँखों से जासूस की तरह उसे देख रहे थे। वह बेहद डरा हुआ था। मुँह पर पसीना झलक आया। भैया के सिरहाने वह ढूँढ़ने लगा। उनका मन हुआ, रंगे हाथ उसे पकड़ लें। पर वह करुणा से भर गए। छोटका सारा रूपया लेकर चला गया। उनको लगा—वह खुद छोटका हैं। सच बात, एक—एक उन्हीं के रूप हैं। वही हैं खरबुज्जा, वही हैं पिता जी, वही हैं सारा परिवार वही हैं वह सारा जगत, संसार, ब्राह्मण्ड—जिसके सम्पर्क में उनका सारा जीवन बीता है।

वह तुलसी की माला लेकर धीरे—धीरे जपने लगे। उन्हें जोशीमठ का वह पत्थर का टुकड़ा याद आया, जिस पर वह दैवी आकृति उभरी थी। पीपल के उस पेड़ की जड़ में रखे हुए वे छोटे—छोटे देवता . . . सिन्दूर के स्वस्तिक . . . शिवालय को पताका—सब उभरने लगे। तन—मन का सारा दर्द, सारी पीड़ा समाप्त हो गई। गुरु महाराज के साथ मानो वह नदी पार कर, बालू—तट पर सुख—शांति से सो रहे हों।

भैया ने दहलीज की ओर देखकर कहा—“आ जाओ।”

जैसे वह मौत को बुला रहे हों !

वह आई। और बड़के भैया चले गए ।

